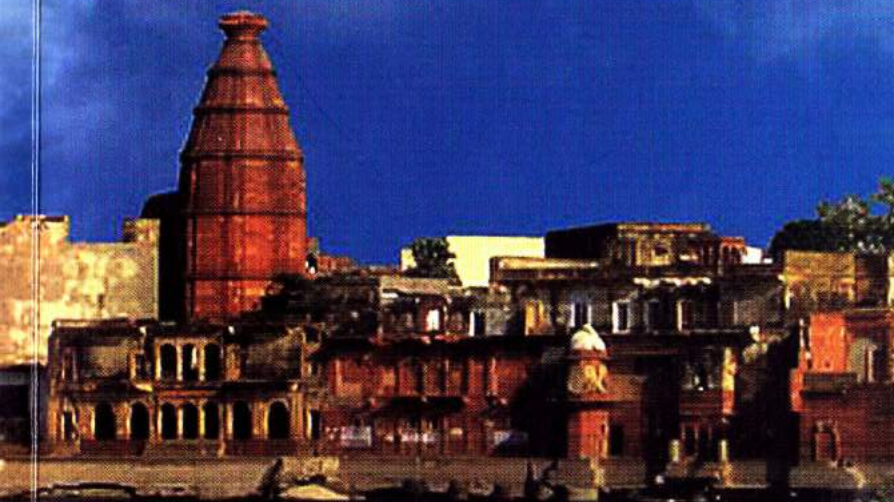


# पूर्ण प्रश्न पूर्ण उत्तर



कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

इस ग्रंथ की विषयवस्तु में जिज्ञासु पाठकगण अपने निकटस्थ किसी भी इस्कॉन केन्द्र से अथवा निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार करने के लिए आमंत्रित हैं :

**The Bhaktivedanta Book Trust  
Hare Krishna Land  
Juhu, Mumbai - 400049, India**

**वेब / ई-मेल :**  
www.indiabbt.com  
admin@indiabbt.com

Perfect Questions Perfect Answers (Hindi)

1st printing : 10,000 copies  
2nd to 19th printings : 2,80,000 copies  
20th Printing, April 2014 : 60,000 copies

© १९८३ भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट  
सर्वाधिकार सुरक्षित

ISBN : 978-93-82716-48-8

प्रकाशक की अनुमति के बिना इस पुस्तक के किसी भी अंश को पुनरुत्पादित, प्रतिलिपित नहीं किया जा सकता। किसी प्राच्य प्रणाली में संग्रहित नहीं किया जा सकता अथवा अन्य किसी भी प्रकार से चाहे इलेक्ट्रॉनिक, मेकेनिकल, फोटोकॉपी, रिकार्डिंग से संचित नहीं किया जा सकता। इस शर्त का भंग करने वाले पर उचित कानूनी कार्यवाही की जाएगी।

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट द्वारा  
प्रकाशित एवं मुद्रित।

BS2M

## अनुक्रमणिका

भूमिका .....	vii
एक	
सर्वाकर्षक श्रीकृष्ण .....	१
फरवरी २७, १९७२	
दो	
वैदिक संस्कृति—वर्णाश्रम-धर्म .....	१८
फरवरी २८, १९७२	
तीन	
जीवन का वास्तविक लक्ष्य .....	२५
फरवरी २८, १९७२ (क्रमशः)	
चार	
प्रकृति के तीन गुण .....	३७
फरवरी २८, १९७२ (क्रमशः)	
पाँच	
निर्मल होना .....	४४
फरवरी २८, १९७२	
छः	
आदर्श भक्त .....	५७
फरवरी २९, १९७२ (सायंकाल)	
सात	
कृष्णभावना में कर्म करना .....	७७
फरवरी २९, १९७२ (सायंकाल क्रमशः)	

आठ

कृष्णभावनामृत में प्रगति ..... १४

(पत्रों का आदान प्रदान)

नौ

भविष्य के विषय में निर्णय ..... १८

न्यूयॉर्क—जुलाई ४, १९७२

निष्कर्ष ..... ११२

लेखक-परिचय ..... ११५

## भूमिका

श्रील प्रभुपाद से मिलने के पहले “भगवान्”, “आध्यात्मिक जीवन” आदि शब्द मेरे लिए बहुत अस्पष्ट थे। मुझे धर्म में सदैव से रुचि रही है, परन्तु कृष्णभावनाभावित भक्तों से मिलने के पहले मुझमें आध्यात्मिक जीवन के विषय में सफल जिज्ञासा हेतु वांछित दृष्टिकोण नहीं था। किसी स्रष्टा का अस्तित्व होना तो साधारण ज्ञान है, परन्तु भगवान् कौन हैं? मैं कौन हूँ? मैंने एक यहूदी विद्यालय में जाकर प्राच्यदर्शन का अध्ययन किया था, परन्तु मुझे अपने प्रश्नों के सन्तोषजनक उत्तर कभी नहीं मिल सके थे।

मैंने हरे कृष्ण मंत्र को सर्वप्रथम वर्ष १९६८ के अन्त में न्यूयॉर्क के ग्रीनविच गाँव में सुना था।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

यह कीर्तन मोहक था और मुझे इससे बहुत शान्ति मिली। मेरा मन इससे प्रभावित हुआ और मुझे शीघ्र ही इस बात पर खेद हुआ कि मैंने भक्तों से एक पत्रिका क्यों नहीं खरीदी। जैसा मुझे बाद में स्पष्ट किया गया, मुझमें एक आध्यात्मिक बीज आरोपित हो चुका था जो कालान्तर में भगवत्-प्रेम के रूप में प्रस्फुटित हो सकता था। कई महीनों के बाद हरे कृष्ण मन्त्र से अंकित एक कार्ड मुझे मिला। इस कार्ड में यह आश्वासन था, “भगवान् के इन नामों का जप करो और आपका जीवन शुद्ध हो जायेगा।” मैं इन्हें समय-समय पर जपता था और यह मन्त्र वास्तव में मेरे मन को शान्ति का अनुभव प्रदान करता था।

कॉलेज के रसायनशास्त्र में बी.एस. उपाधि के साथ स्नातक हो जाने पर १९७१ में मैं शान्ति सेना में भर्ती हो गया और विज्ञान-शिक्षक के रूप में पर भारत गया। वहाँ मैंने हरे कृष्ण आन्दोलन के विषय में पूछ-ताछ की। मैं इसके कीर्तन से आकर्षित हुआ था और इसके दर्शन ने तो मुझमें कौतूहल उत्पन्न कर दिया था। इस आन्दोलन की प्रामाणिकता को जानने के लिए मैं मैं उत्सुक था। भारत आने से पहले मैं न्यूयॉर्क के कृष्ण मन्दिर में अनेकों बार गया था, परन्तु भक्त के सदृश प्रत्यक्ष सादगीपूर्ण जीवन को स्वयं अपनाने के विषय में मैंने कभी नहीं सोचा था।

कृष्णभावनामृत भक्तों से मैं भारत में सर्वप्रथम कलकत्ता में अक्तूबर १९७१ में उनके द्वारा आयोजित एक उत्सव के समय मिला था। भक्तों ने योग का उद्देश्य तथा आध्यात्मिक जीवन के विषय में जिज्ञासा की आवश्यकता को मुझे समझाया। मुझे अनुभव होने लगा कि वे जिन अनुष्ठानों तथा विधियों का पालन करते थे, वे उबाऊ अथवा भावनात्मक क्रियाएँ नहीं थीं, बल्कि एक बुद्धिपरक वास्तविक जीवन प्रणाली थीं।

आरम्भ में मेरे लिए कृष्णभावनामृत के दर्शन को समझना बहुत कठिन था। मेरे पश्चिमी पालन-पोषण ने अनेक सूक्ष्म ढंगों से मुझे ऐसी सरल वस्तुओं को देखने से रोका, जो मुख पर नाक की भाँति स्पष्ट थीं। सौभाग्यवश भक्तों ने मुझे कुछ आधारभूत संयमों के पालन का अभ्यास करने के लिए सहमत कर लिया और इस प्रकार आध्यात्मिक जीवन हेतु मुझे कुछ अन्तर्दृष्टि मिलने लगी। अब मैं स्मरण कर सकता हूँ कि आध्यात्मिक और दिव्य अस्तित्व के विषय में मेरी धारणाएँ कितनी दूरवर्ती एवं सारहीन थीं। मैं श्रील प्रभुपाद से इस समय—१९७१ के नवम्बर में थोड़े समय के लिए मिला और

उसके कुछ ही समय पश्चात् बाद मैंने शाकाहारी होने का निश्चय किया (मुझे शाकाहारी होने का गर्व था, परन्तु बाद में श्रील प्रभुपाद ने मुझे याद दिलवाया कि शाकाहारी तो कबूतर भी होते हैं)।

१९७२ की फरवरी में कलकत्ता में मैं कृष्णभावनामृत के कुछ भक्तों से मिला, जिन्होंने मुझे मायापुर (९० मील उत्तर में स्थित एक पवित्र द्वीप) के उत्सव में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया। यह उत्सव भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार माने जाने वाले श्रीचैतन्य महाप्रभु के सम्मान में मनाया जाता है। मैं नेपाल की यात्रा हेतु योजना बना रहा था, परन्तु शान्ति-सेना ने मुझे भारत छोड़ने की अनुमति नहीं दी, अतः मैं मायापुर चला गया।

अधिकतम दो दिन रहने की योजना बनाकर मैं मायापुर के लिए रवाना हुआ, परन्तु वहाँ मैं एक सप्ताह रह गया। मैं ही उस द्वीप में एकमात्र पश्चिमी अभक्त व्यक्ति था, और चूँकि भक्तों के साथ मैं उन्हीं की भूमि पर रहा था, अतः कृष्णभावनामृत का निकटता से अध्ययन करने का मुझे अपूर्व अवसर मिला।

उत्सव के तीसरे दिन मुझे श्रील प्रभुपाद के दर्शनार्थ बुलवाया गया। वे एक छोटी कुटिया में रह रहे थे, जो आधी ईंटों से बनी थी तथा आधी फूस से ढकी हुई थी। इस कुटिया में फर्नीचर की दो या तीन साधारण चीजें थीं। श्रील प्रभुपाद ने मुझे बैठने के लिए कहा, फिर उन्होंने पूछा, “आप कैसे हैं? और क्या आपको कुछ पूछना है?” भक्तों ने मुझे समझा दिया था कि श्रील प्रभुपाद मेरे प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे, क्योंकि वे प्रामाणिक गुरु-शिष्य परम्परा के प्रतिनिधि हैं। मैंने सोचा कि श्रील प्रभुपाद वास्तव में जानते होंगे कि संसार में क्या हो रहा है? अन्ततोगत्वा उनके शिष्यों ने इसका दावा किया था; मैं उनका प्रशंसक था और उनका आदर करता था।

अतः मन में इस बात को ध्यान में रखकर मैंने प्रश्न पूछना आरम्भ किया। अनभिज्ञता से मैं एक आध्यात्मिक गुरु के पास पहुँच गया था और वह भी निर्धारित विधि से—आध्यात्मिक जीवन के विषय में नम्रता से प्रश्न पूछने के द्वारा।

श्रील प्रभुपाद मुझसे प्रसन्न प्रतीत हुए और आगामी कई दिनों में उन्होंने मेरे प्रश्नों के उत्तर दे दिये। मैंने अधिकतर प्रश्न शैक्षिक ढंग से पूछे थे, परन्तु उन्होंने सदैव वैयक्तिक ढंग से उत्तर दिये जिससे मैं वास्तव में आध्यात्मिक जीवन ग्रहण कर सकूँ। उनके उत्तर तर्कसम्मत, वैज्ञानिक, सन्तोषजनक और आश्चर्यजनक ढंग से स्पष्ट थे। श्रील प्रभुपाद तथा उनके शिष्यों से मिलने के पहले आध्यात्मिक जीवन मेरे लिए सदैव अस्पष्ट एवं धुँधला था, परन्तु श्रील प्रभुपाद के साथ वार्तालाप यथार्थवादी, स्पष्ट एवं प्रेरक थे! श्रील प्रभुपाद धैर्य से मुझे यह समझाने की चेष्टा कर रहे थे कि भगवान् श्रीकृष्ण अर्थात् परमेश्वर ही सर्वोच्च भोक्ता, परम मित्र एवं सर्वोच्च स्वामी हैं। इस स्पष्ट सिद्धान्त को स्वीकार करने से पूर्व में मैंने बहुत-सी बाधाएँ उपस्थित कीं—यह कि भगवान् को समझने के लिए ईशभावना के सम्बन्ध में मुझे गम्भीर होना पड़ेगा इत्यादि। परन्तु श्रील प्रभुपाद अनवरत रूप से तथा दयालुता से मुझे प्रेरित करते रहे। यद्यपि अपने भावों को प्रकट करने की योग्यता का मुझमें अभाव था, श्रील प्रभुपाद ने मेरी प्रत्येक जिज्ञासा को समझा और पूर्णता के साथ उत्तर दिया।

बॉब कोहेन

१४ अगस्त, १९७४

एक

## सर्वाकर्षक श्रीकृष्ण

फरवरी २७, १९७२

**बॉब :** कृष्ण नाम का क्या अर्थ है ?

**श्रील प्रभुपाद :** कृष्ण का अर्थ है, “सर्वाकर्षक।”

**बॉब :** सर्वाकर्षक ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। जब तक भगवान् सर्वाकर्षक न हों, तब तक वे भगवान् कैसे हो सकते हैं ? जब मनुष्य आकर्षक होता है, तभी वह महत्त्वपूर्ण होता है। क्या ऐसा नहीं है ?

**बॉब :** ऐसा ही है।

**श्रील प्रभुपाद :** अतएव, भगवान् का भी आकर्षक होना आवश्यक है, तथा सबके लिए आकर्षक होना आवश्यक है। अतः यदि भगवान् का कोई नाम है अथवा आप भगवान् को कोई नाम देना चाहते हैं, तो केवल “कृष्ण” नाम ही दिया जा सकता है।

**बॉब :** किन्तु केवल कृष्ण नाम ही क्यों ?

**श्रील प्रभुपाद :** क्योंकि वे सर्वाकर्षक हैं। कृष्ण का अर्थ है, “सर्वाकर्षक।”

**बॉब :** ओह, समझा।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। भगवान् का कोई नाम नहीं है। किन्तु हम उन्हें उनके गुणों के अनुरूप नाम देते हैं। यदि कोई मनुष्य अति सुन्दर होता है, तब हम उसे “सुन्दर” कहते हैं। यदि कोई व्यक्ति अत्यन्त

बुद्धिमान् होता है, तब हम उसे “बुद्धिमान” कहते हैं। अतः नाम गुणानुसार दिया जाता है। भगवान् सर्वाकर्षक हैं, अतएव कृष्ण नाम केवल उनके लिए ही प्रयुक्त किया जा सकता है। कृष्ण का अर्थ है, सर्वाकर्षक। इसमें समस्त वस्तुओं का समावेश हो जाता है।

**बाँब :** किन्तु उस नाम के विषय में आप क्या कहना चाहेंगे जिसका अर्थ है “सर्व-शक्तिमान्”?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ...जब तक आप सर्वशक्तिमान् न हों, आप सर्वाकर्षक कैसे हो सकते हैं?

**श्यामसुन्दर :** [श्रील प्रभुपाद के सचिव] : इसमें प्रत्येक वस्तु का समावेश हो जाता है।

**श्रील प्रभुपाद :** प्रत्येक वस्तु। उन्हें अत्यधिक सुन्दर होना चाहिए; उन्हें अत्यन्त बुद्धिमान् होना चाहिए; उन्हें अत्यन्त शक्तिमान् होना चाहिए; उन्हें अत्यन्त यशस्वी होना चाहिए...

**बाँब :** क्या कृष्ण दुष्टों को भी आकर्षक लगते हैं?

**श्रील प्रभुपाद :** अरे, हाँ! वे सबसे महान् दुष्ट भी थे।

**बाँब :** वह कैसे?

**श्रील प्रभुपाद :** [हँसते हुए] क्योंकि वे सदैव गोपियों को सताते रहते थे।

**श्यामसुन्दर :** सताते थे?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। कभी-कभी जब राधारानी बाहर जाती थीं, कृष्ण उन पर धावा बोल देते थे और जब वे गिर जाती थीं और कहतीं—“कृष्ण मुझे ऐसे न सताओ”—वे दोनों गिर जाते थे। कृष्ण इस अवसर का लाभ उठा कर उनका चुम्बन ले लेते थे। [हँसते हैं] इस प्रकार राधारानी अत्यन्त प्रसन्न हो जाती थीं, किन्तु ऊपर से कृष्ण महानतम दुष्ट थे। इस प्रकार, यदि कृष्ण में दुष्टता न

होती, तो जगत् में दुष्टता का अस्तित्व किस प्रकार सम्भव होता? ईश्वर सम्बन्धी हमारा सूत्र यह है कि वे प्रत्येक वस्तु के स्रोत हैं। जब तक कृष्ण में दुष्टता न हो, तब तक वह प्रकाशित कैसे हो सकती है...क्योंकि वे प्रत्येक वस्तु के उद्गम हैं। किन्तु उनकी दुष्टता इतनी भली है कि प्रत्येक व्यक्ति उनकी दुष्टता की उपासना करता है।

**बाँब :** जो इतने भले नहीं हैं, उन दुष्टों के विषय में आप क्या कहते हैं?

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं, दुष्टता अच्छी नहीं होती है, किन्तु कृष्ण परम हैं। वे परमेश्वर हैं। अतएव उनकी दुष्टता भी उत्तम है। कृष्ण सर्वथा उत्तम हैं। भगवान् श्रेष्ठ हैं।

**बाँब :** हाँ।

**श्रील प्रभुपाद :** अतः जब वे दुष्ट बनते हैं, वह भी उत्तम है। कृष्ण ऐसे हैं। दुष्टता उत्तम नहीं है, किन्तु जब कृष्ण इसका आचरण करते हैं, वह दुष्टता भी उत्तम हो जाती है क्योंकि वे पूर्णरूपेण उत्तम हैं। यह तथ्य व्यक्ति को समझना चाहिए।

**बाँब :** क्या कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिन्हें कृष्ण आकर्षक प्रतीत नहीं होते हैं?

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं। समस्त लोगों को वे आकर्षक प्रतीत होंगे। कौन आकर्षित नहीं होता? एक उदाहरण तो दीजिए—“यह मनुष्य अथवा यह जीव कृष्ण के प्रति आकर्षित नहीं है।” ऐसे एक व्यक्ति को तो खोजिए।

**बाँब :** किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसे जीवन में ऐसे कार्य करने की इच्छा हो जिन्हें वह गलत समझता हो, किन्तु जिसे शक्ति, प्रतिष्ठा अथवा धन प्राप्त करने की इच्छा हो...

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ।

**बाँब :** (उसे) भगवान् अनाकर्षक प्रतीत हो सकते हैं। हो सकता है उसे भगवान् आकर्षक प्रतीत न हों, क्योंकि भगवान् उसे अपराध की भावना प्रदान करते हैं।

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं, भगवान् नहीं। उसका आकर्षण शक्तिमान् बनने की ओर है। मानव शक्तिमान् अथवा धनवान् बनना चाहता है, है न? किन्तु कृष्ण से अधिक धनवान् कोई नहीं है। अतएव कृष्ण उसे भी आकर्षक प्रतीत होते हैं।

**बाँब :** यदि धनवान् बनने की कामना रखने वाला व्यक्ति कृष्ण की स्तुति करता है, तो क्या वह धनवान् बन जाएगा?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, अवश्य।

**बाँब :** वह इस साधन से धनवान् बन सकता है?

**श्रील प्रभुपाद :** अवश्य। कृष्ण सर्व-शक्तिमान् हैं, अतएव यदि आप सम्पन्न बनने के लिए कृष्ण से प्रार्थना करते हैं, तब कृष्ण आपको सम्पन्न बना देंगे।

**बाँब :** यदि कोई व्यक्ति दुराचारी जीवन व्यतीत करता है, किन्तु सम्पन्न बनने के लिए प्रार्थना करता है, तब भी वह सम्पन्न बन सकता है?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, कृष्ण की स्तुति करना दुराचार नहीं है।

**बाँब :** हाँ।

**श्रील प्रभुपाद :** (हर्ष प्रकट करते हुए) किसी न किसी प्रकार वह कृष्ण से प्रार्थना करता है, अतः आप यह नहीं कह सकते कि वह दुराचारी है।

**बाँब :** जी हाँ।

**श्रील प्रभुपाद :** भगवद्गीता में कृष्ण कहते हैं, *अपि चेत्सुदुराचारो भजते माम् अनन्यभाक्*। क्या आपने इसे पढ़ा है?

**बाँब :** जी, हाँ। संस्कृत मुझे नहीं आती, किंतु अंग्रेजी आती है।

**श्रील प्रभुपाद :** अच्छा।

**बाँब :** “यदि अत्यन्त दुराचारी व्यक्ति भी मेरी स्तुति करता है...”

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ।

**बाँब :** “...उसकी उन्नति होगी।”

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। जैसे ही वह कृष्ण की स्तुति करना प्रारम्भ करता है, वह दुराचारी नहीं रहता। अतएव कृष्ण सर्वाकर्षक हैं। वेदों में कहा गया है कि परम सत्य अथवा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् समस्त सुखों के सागर हैं—*रसो वै सः*। प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी की लालसा होती है, क्योंकि उसे उसमें किसी रस की प्राप्ति होती है।

**बाँब :** क्षमा कीजिए?

**श्रील प्रभुपाद :** कोई रस। मान लीजिए कोई व्यक्ति मदिरापान कर रहा है। वह मदिरापान क्यों कर रहा है? उसे उस पान के द्वारा रस, कुछ आनन्द की प्राप्ति हो रही है। किसी व्यक्ति को धन की लालसा है, क्योंकि धन प्राप्त करने से उसे उससे एक रस की प्राप्ति होती है।

**बाँब :** रस का अर्थ क्या है?

**श्रील प्रभुपाद :** [श्यामसुन्दर से] रस की परिभाषा क्या है?

**श्यामसुन्दर :** आस्वाद, सुख।

**बाँब :** ठीक है।

**श्रील प्रभुपाद :** सुखदायक आस्वाद। अतः वेद कहते हैं, *रसो वै*

सः। अंग्रेजी के 'मैलो' (mellow) शब्द का उचित अनुवाद "रस" है। [श्यामसुन्दर की पत्नी मालती भोजन की एक थाली सहित प्रवेश करती है] वह क्या है?

**मालती** : तला हुआ बैंगन।

**श्रील प्रभुपाद** : ओह! सर्वाकर्षक! सर्वाकर्षक! [हंसी]

**बाँब** : वैज्ञानिक कौन है?

**श्रील प्रभुपाद** : वह व्यक्ति जिसे वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान है।

**बाँब** : वह समझता है कि उसे वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान है।

**श्रील प्रभुपाद** : क्या?

**बाँब** : वह आशावान है कि उसे वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान है।

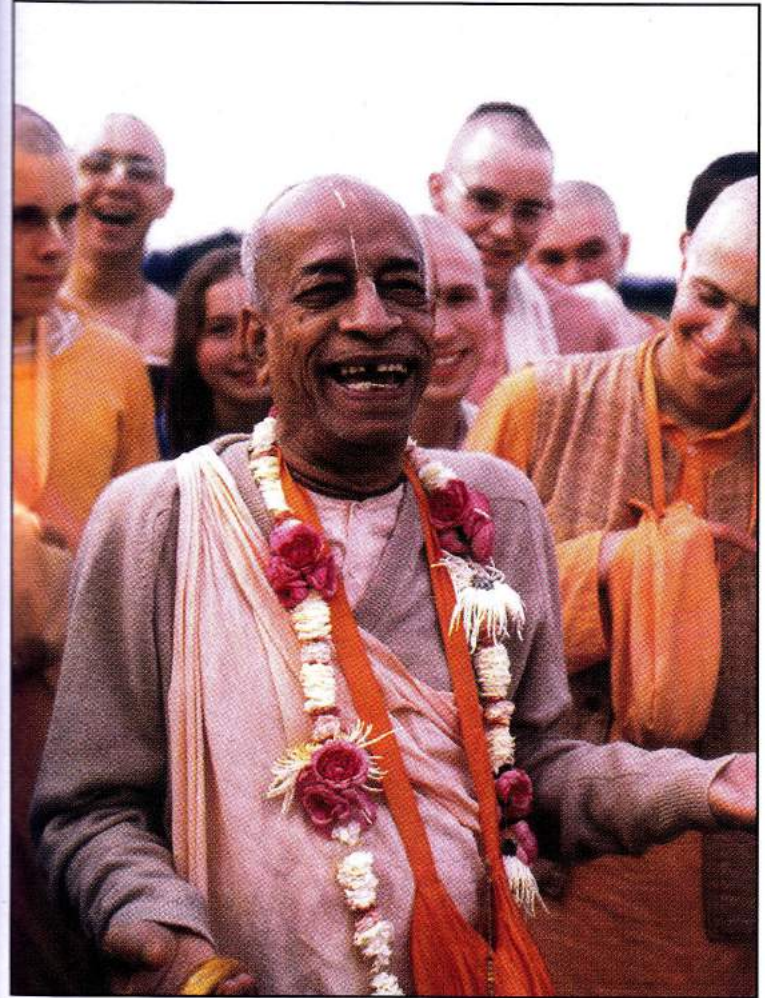
**श्रील प्रभुपाद** : नहीं, उसे ज्ञात होना चाहिए। हम वैज्ञानिक के समीप जाते हैं, क्योंकि यह समझा जाता है कि उसे वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान है। वैज्ञानिक का अर्थ है, वह व्यक्ति जिसे वस्तुओं के यथार्थ रूप का ज्ञान है।

**श्यामसुन्दर** : कृष्ण किस प्रकार महानतम वैज्ञानिक हैं?

**श्रील प्रभुपाद** : क्योंकि उन्हें प्रत्येक वस्तु का ज्ञान है। वैज्ञानिक वह है जिसे किसी विषय-वस्तु का सम्पूर्ण ज्ञान होता है। वही एक वैज्ञानिक है। कृष्ण—वे सर्वज्ञ हैं।

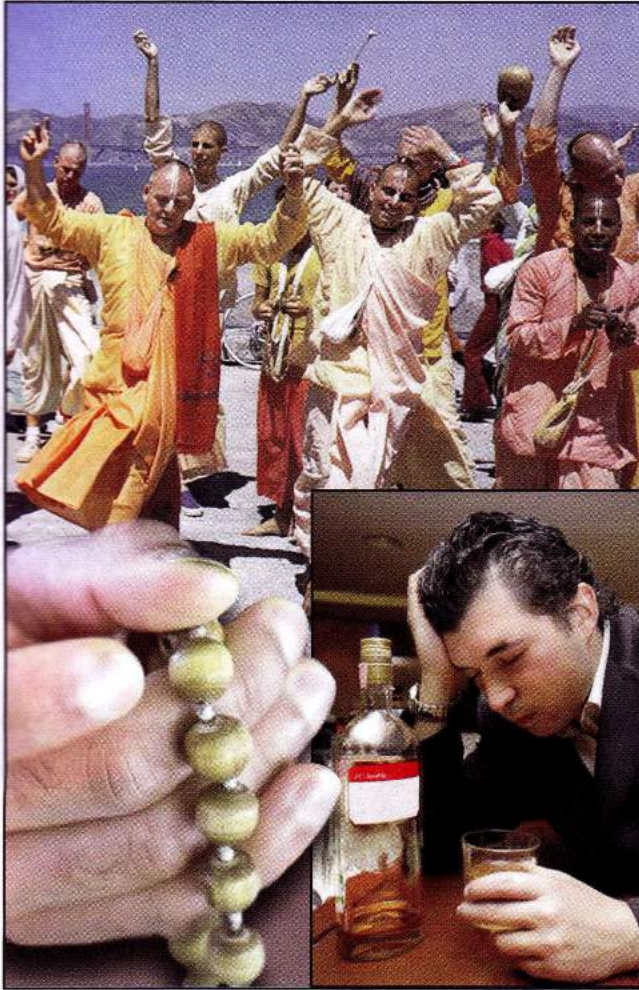
**बाँब** : अभी मैं विज्ञान का एक अध्यापक हूँ।

**श्रील प्रभुपाद** : हाँ, शिक्षा दे रहे हैं। किन्तु जब तक आपको पूर्ण ज्ञान न हो, आप किस प्रकार शिक्षा दे सकते हैं? यही हमारा प्रश्न है।



कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद  
अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापकाचार्य एवं समग्र विश्व में  
कृष्ण-भक्ति के अद्वितीय प्रचारक





भगवान के भक्त भक्तिमय क्रियाओं में वास्तविक आनंद का अनुभव करते हैं और भौतिकवादी लोग आधुनिक सभ्यता में नशा इत्यादि के द्वारा कृत्रिम रूप से सुखी होने का प्रयास करते हैं।

**बाँब :** पूर्ण ज्ञान के बिना, यद्यपि आप यह सीखा सकते हैं...

**श्रील प्रभुपाद :** वह वंचना है, वह अध्यापन नहीं है। वह वंचना है। जैसा कि वैज्ञानिक कहते हैं : “एक पिण्ड था... और सृष्टि हो गई। सम्भवतः हो सकता है...” यह क्या है? मात्र वंचना! यह अध्यापन नहीं है, यह वंचना है।

**बाँब :** पूर्ण ज्ञान के बिना क्या मैं कुछ वस्तुओं की शिक्षा नहीं दे सकता हूँ? उदाहरणार्थ मैं...

**श्रील प्रभुपाद :** आपको जिस सीमा तक ज्ञान है, उतनी शिक्षा आप दे सकते हैं।

**बाँब :** हाँ, किन्तु मुझे अपने ज्ञान से अधिक की शिक्षा देने का दावा नहीं करना चाहिए।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, वह वंचना है।

**श्यामसुन्दर :** दूसरे शब्दों में, आंशिक ज्ञान से मनुष्य सत्य की शिक्षा नहीं दे सकता है।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। ऐसा करना किसी भी मानव के लिए सम्भव नहीं है। मानव की इन्द्रियाँ अपूर्ण होती हैं। अतः वह पूर्ण ज्ञान की शिक्षा किस प्रकार दे सकता है? मान लीजिए सूर्य को आप एक थाली की भाँति देखते हैं। आपके पास सूर्य के समीप जाने का कोई साधन नहीं है। यदि आप कहें कि हम दूरवीक्षण यन्त्र अथवा अन्य उपकरणों के द्वारा सूर्य को देख सकते हैं, तब उनका निर्माण भी तो आपने ही किया है तथा आप अपूर्ण हैं। तब आपका यन्त्र पूर्ण कैसे हो सकता है? अतएव सूर्य-विषयक आपका ज्ञान अपूर्ण है। अतः जब तक आपको पूर्ण ज्ञान न हो, सूर्य के विषय में शिक्षा मत दीजिए। यह वंचना है।

**बाँब :** किन्तु यदि हम यह शिक्षा दें कि माना जाता है कि सूर्य की दूरी ९,३०,००,००० मील है, तब ?

**श्रील प्रभुपाद :** जैसे ही आप “माना जाता है” कहते हैं, वह वैज्ञानिक तथ्य नहीं रहता है।

**बाँब :** तब मेरे विचार से लगभग समस्त विज्ञान अवैज्ञानिक है।

**श्रील प्रभुपाद :** यही तो बात है !

**बाँब :** समस्त विज्ञान इस अथवा उस मान्यता पर ही आधारित है।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। वे अपूर्ण रूप से शिक्षा दे रहे हैं, जैसे कि वे चन्द्रमा के विषय में इतना अधिक प्रचार कर रहे हैं। क्या आपके विचार में उनका ज्ञान पूर्ण है ?

**बाँब :** नहीं।

**श्रील प्रभुपाद :** तब ?

**बाँब :** समाज में शिक्षक का उचित कर्तव्य क्या है ? उदाहरणार्थ एक विज्ञान के शिक्षक को लिजिए। उसे कक्षा में क्या करना चाहिए ?

**श्रील प्रभुपाद :** कक्षा ? आपको केवल कृष्ण के विषय में शिक्षा देनी चाहिए।

**बाँब :** क्या उसे दूसरे किसी के बारे में शिक्षा नहीं देनी चाहिए...

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं। उसमें सब कुछ आ जाएगा। उस का लक्ष्य होना चाहिए, कृष्ण को जानना।

**बाँब :** क्या एक वैज्ञानिक, कृष्ण को ध्येय मान कर अम्ल तथा क्षार के सम्मिश्रण के विज्ञान तथा इसी प्रकार के अन्य विज्ञान की शिक्षा दे सकता है ?

**श्रील प्रभुपाद :** ऐसा कैसे हो सकता है ?

**बाँब :** यदि आप...जब व्यक्ति विज्ञान का अध्ययन करता है, तब उसे प्रकृति की सामान्य प्रवृत्तियों का ज्ञान हो जाता है, तथा प्रकृति की ये सामान्य प्रवृत्तियाँ एक नियामक शक्ति की ओर संकेत करती हैं...

**श्रील प्रभुपाद :** मैं उस दिन इसी को ही स्पष्ट कर रहा था। मैंने एक रसायनशास्त्री से पूछा कि रसायनशास्त्र के सूत्रों के अनुसार हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन को मिलाने से जल बन जाता है। बनता है कि नहीं ?

**बाँब :** यह सत्य है।

**श्रील प्रभुपाद :** तो अटलांटिक महासागर तथा प्रशान्त महासागर में एक विशाल परिमाण में जल है। उसके लिए रसायनों की कितनी मात्रा की आवश्यकता थी ?

**बाँब :** कितनी मात्रा ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। कितने टन ?

**बाँब :** अनेकों !

**श्रील प्रभुपाद :** तो इसकी आपूर्ति किसने की ?

**बाँब :** इसकी आपूर्ति भगवान् ने की।

**श्रील प्रभुपाद :** किसी ने तो इसकी आपूर्ति अवश्य की होगी।

**बाँब :** हाँ।

**श्रील प्रभुपाद :** यही विज्ञान है। आप इसी प्रकार शिक्षा दे सकते हैं।

**बाँब :** क्या व्यक्ति को यह शिक्षा देने का कष्ट उठाना चाहिए कि यदि आप अम्ल तथा क्षार को मिलाएँ, तो वे एक दूसरे के प्रभाव को नष्ट कर देते हैं ?

**श्रील प्रभुपाद :** वही बात है। अनेकों प्रकार के बुलबुले हैं। इसे कौन बना रहा है ? अम्ल तथा क्षार की आपूर्ति कौन कर रहा है ?

**बाँब :** तब यह भी उसी स्रोत से प्राप्त होता है जिस से जल प्राप्त होता है।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। जब तक आपके पास हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन न हो, आप जल की रचना नहीं कर सकते हैं। अतः यहाँ एक विशाल—न केवल यह अटलांटिक तथा प्रशान्त महासागर—अपितु करोड़ों ग्रह हैं तथा करोड़ों अटलांटिक तथा प्रशान्त महासागर हैं। अतः हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन से इस जल की रचना किसने की, तथा इसकी आपूर्ति किस प्रकार की गई? यही हमारा प्रश्न है। किसी ने तो इसकी आपूर्ति अवश्य की होगी, अन्यथा यह कैसे अस्तित्व में आया?

**बाँब :** किन्तु क्या यह शिक्षा भी देनी चाहिए कि आप हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन से जल किस प्रकार बना सकते हैं? उसको एक साथ जलाने की प्रक्रिया—क्या इसकी भी शिक्षा देनी चाहिए? अर्थात् आप हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन को एक साथ जलाएँ...

**श्रील प्रभुपाद :** वह बात गौण है। वह अधिक कठिन नहीं है। जैसे मालती ने यह पूरी बनाई। आटा है तथा घी है, उनसे उसने पूरी बनाई। किन्तु यदि घी व आटा न हो, पूरी किस प्रकार बन सकती है? *भगवद्गीता* में यह कथन है—“जल, पृथ्वी, वायु तथा अग्नि—ये मेरी शक्तियाँ हैं।” आपका शरीर क्या है? यह बाह्य शरीर—यह आपकी शक्ति है। क्या आप यह जानते हो? आपका शरीर आपकी शक्ति से निर्मित है। उदाहरण के लिए, मैं भोजन कर रहा हूँ...

**बाँब :** हाँ।

**श्रील प्रभुपाद :** इस प्रकार मैं कुछ शक्ति का निर्माण कर रहा हूँ, अतएव मेरे शरीर का पालन होता है।

**बाँब :** ओह, अब समझा।

**श्रील प्रभुपाद :** अतएव, आपका शरीर आपकी शक्ति से निर्मित है।

**बाँब :** किन्तु जब आप भोजन करते हैं, तब भोजन में सूर्य से प्राप्त ऊर्जा होती है।

**श्रील प्रभुपाद :** मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ। मैं भोजन का पाचन करके कुछ ऊर्जा का निर्माण कर रहा हूँ, और वह ऊर्जा मेरे शरीर का पालन कर रही है। यदि आपकी ऊर्जा की आपूर्ति सुचारू नहीं है, तब आपका शरीर दुर्बल या अस्वस्थ हो जाता है। आपका शरीर आपकी अपनी ऊर्जा से ही निर्मित होता है। उसी प्रकार यह विशाल वैश्विक शरीर—ब्रह्माण्ड—कृष्ण की शक्ति से निर्मित है। आप इसे किस प्रकार अस्वीकार कर सकते हैं? जिस प्रकार आपके शरीर का निर्माण आपकी शक्ति से हुआ है, उसी भाँति ब्रह्माण्डरूपी शरीर का निर्माण भी अवश्य किसी की शक्ति से हुआ होगा। वह कृष्ण हैं।

**बाँब :** इसे समझने के लिए मुझे इसके विषय में सोचना होगा।

**श्रील प्रभुपाद :** इसमें समझने की क्या बात है? यह एक तथ्य है। (वे हँसते हैं।) आपके केश प्रतिदिन बढ़ते हैं। क्यों? क्योंकि आपमें कुछ शक्ति है।

**बाँब :** वह शक्ति, जो मैं अपने भोजन से प्राप्त करता हूँ।

**श्रील प्रभुपाद :** किसी न किसी तरह आपने वह शक्ति प्राप्त की है तथा उस शक्ति से आपके केश बढ़ रहे हैं। अतः यदि आपके शरीर की रचना आपकी शक्ति से हुई है, तो उसी भाँति यह सम्पूर्ण विशाल सृष्टि ईश्वर की शक्ति से रचित हुई है। यह एक तथ्य है। यह *आपकी* शक्ति नहीं है।

**बाँब :** अच्छा। अब मैं समझा।

**एक भक्त :** ठीक जैसे—क्या इस ब्रह्माण्ड के समस्त ग्रह सूर्य की ऊर्जा नहीं हैं—सूर्य की ऊर्जा का एक उत्पादन ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, किन्तु सूर्य को किसने उत्पन्न किया ? वह कृष्ण की शक्ति है, क्योंकि वह ताप है, और कृष्ण कहते हैं, भूमिरापोऽनलो वायुः—“अनल—ताप—मेरी शक्ति है।” अतः सूर्य कृष्ण की तप्त करने वाली शक्ति का प्रतिनिधि है। यह आपकी शक्ति नहीं है। आप यह नहीं कह सकते हैं, “सूर्य मेरे द्वारा रचित है।” किन्तु किसी ने इसकी रचना अवश्य की होगी और कृष्ण कहते हैं कि उन्होंने यह रचना की है। अतः हम कृष्ण पर विश्वास करते हैं। अतएव हम कृष्ण-भक्त हैं।

**बाँब :** कृष्ण-वादी ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। अतः हमारा ज्ञान पूर्ण है। यदि मैं कहूँ कि ताप कृष्ण की शक्ति है, तब आप इसका खण्डन नहीं कर सकते हैं क्योंकि यह आपकी शक्ति नहीं है। आपके शरीर में कुछ निश्चित मात्रा में ताप है। इसी तरह ताप किसी की शक्ति है। और वह व्यक्ति कौन है ? वे कृष्ण हैं। कृष्ण कहते हैं, “हाँ, यह मेरी शक्ति है।” अतः मेरा ज्ञान पूर्ण है क्योंकि मैं महानतम वैज्ञानिक के मत को स्वीकार करता हूँ। मैं महानतम वैज्ञानिक हूँ। मैं स्वयं एक मूर्ख व्यक्ति हो सकता हूँ, किन्तु महानतम वैज्ञानिक से ज्ञान लेने के कारण मैं महानतम वैज्ञानिक हूँ। मुझे कोई कठिनाई नहीं है।

**बाँब :** क्षमा कीजिए ?

**श्रील प्रभुपाद :** मुझे महानतम वैज्ञानिक बनने में कोई कठिनाई नहीं है, क्योंकि मैं महानतम वैज्ञानिक से ज्ञान स्वीकार करता हूँ। “यह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार—वे मेरी आठ भिन्न शक्तियाँ हैं।”

**बाँब :** वे भिन्न शक्तियाँ हैं ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। ठीक इस दुग्ध की भाँति। यह दुग्ध क्या है ? गौ की पृथक् की गई शक्ति। (श्यामसुन्दर तथा बाँब स्तंभित हो गये, और समझने पर हंसते हैं) ऐसा नहीं है क्या ? यह गौ की पृथक् की गई शक्ति की अभिव्यक्ति है।

**श्यामसुन्दर :** क्या यह एक उपोत्पादन की भाँति है ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ।

**बाँब :** इस शक्ति के कृष्ण से पृथक् होने का महत्त्व क्या है ?

**श्रील प्रभुपाद :** अलग होने का अर्थ यह है कि इसका निर्माण गाय के शरीर से हुआ है, किन्तु यह गाय नहीं है। यही पृथक्ता है।

**बाँब :** अतः यह पृथ्वी तथा अन्य सब कुछ कृष्ण से ही बना है किन्तु यह कृष्ण नहीं है ?

**श्रील प्रभुपाद :** यह कृष्ण नहीं है। अथवा आप कह सकते हैं, यह एक ही साथ कृष्ण है भी तथा नहीं भी है। यह हमारा दर्शन है—अचिन्त्य भेदाभेद। आप यह नहीं कह सकते हैं कि ये वस्तुएँ कृष्ण से भिन्न हैं क्योंकि कृष्ण के बिना उनका कोई अस्तित्व नहीं है। साथ ही आप यह भी नहीं कह सकते हैं, “फिर क्यों न मैं जल की उपासना करूँ। कृष्ण की क्यों करूँ ?” सर्वेश्वरवादी कहते हैं कि क्योंकि सब कुछ भगवान् ही है, अतएव हम जो कुछ भी करते हैं वह भगवान् की उपासना है। यह मायावादी दर्शन है—यह समझना कि चूँकि प्रत्येक वस्तु ईश्वर से बनी है, अतएव प्रत्येक वस्तु ईश्वर है। किन्तु हमारा दर्शन यह है कि प्रत्येक वस्तु ईश्वर है भी तथा ईश्वर नहीं भी है।

**बाँब :** फिर कौन सी वस्तु भगवान् है ? क्या पृथ्वी पर कोई वस्तु है जो भगवान् है ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, क्योंकि प्रत्येक वस्तु भगवान् की शक्ति से ही बनी है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी भी वस्तु की उपासना करने से आप भगवान् की उपासना करते हैं।

**बाँब :** तब इस पृथ्वी पर क्या है जो माया नहीं है? यह...

**श्रील प्रभुपाद :** माया का अर्थ है शक्ति।

**बाँब :** इसका अर्थ शक्ति है?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। माया—तथा इसका दूसरा अर्थ है “भ्रम।” अतएव मूर्ख लोग शक्ति को शक्तिमान् के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। यह माया है। जैसे कि सूर्य का प्रकाश। सूर्य का प्रकाश आपके कमरे में प्रवेश करता है। सूर्य का प्रकाश सूर्य की शक्ति है। सूर्यप्रकाश के आपके कमरे में प्रवेश करने मात्र से आप यह नहीं कह सकते हैं कि सूर्य ने प्रवेश किया है। यदि सूर्य आपके कमरे में प्रवेश करेगा तब आपका कमरा, आप तथा प्रत्येक वस्तु समाप्त हो जाएगी। तत्क्षण। आपको यह समझने का समय नहीं रहेगा कि सूर्य ने प्रवेश किया है। है न?

**बाँब :** ऐसा ही है।

**श्रील प्रभुपाद :** किन्तु आप यह नहीं कह सकते कि सूर्य का प्रकाश सूर्य नहीं है। सूर्य के बिना सूर्य का प्रकाश कहाँ है? अतः आप यह नहीं कह सकते कि सूर्य का प्रकाश सूर्य नहीं है। किन्तु साथ ही साथ यह सूर्य नहीं है। यह सूर्य है भी तथा नहीं भी है। यह हमारा दर्शन है—अचिन्त्य भिन्नता तथा अभिन्नता। भौतिक दृष्टि से आप यह विचार नहीं कर सकते हैं कि एक वस्तु एक ही साथ सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों हो सकती है। आप यह विचार नहीं कर सकते हैं। वह अचिन्त्य शक्ति है। प्रत्येक वस्तु कृष्ण की शक्ति है अतएव कृष्ण किसी भी शक्ति से स्वयं को प्रकट कर

सकते हैं। अतएव जब हम मिट्टी, जल अथवा वैसी ही किसी वस्तु से निर्मित रूप में कृष्ण की उपासना करते हैं, तो वह कृष्ण ही होती है। आप यह नहीं कह सकते हैं कि यह कृष्ण नहीं है। जब हम कृष्ण के इस धातु रूप (मंदिर की श्रीमूर्ति) की उपासना करते हैं, वह कृष्ण ही है। यह एक तथ्य है क्योंकि धातु कृष्ण की एक शक्ति है। अतएव यह कृष्ण से अभिन्न है तथा कृष्ण इतने शक्तिमान् हैं कि वे अपनी शक्ति में स्वयं को पूर्ण रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं। अतः यह मूर्ति-पूजा धर्महीनता नहीं है। यदि आपको विधि ज्ञात है, तब यह वस्तुतः भगवान् की उपासना है।

**बाँब :** यदि आपको विधि ज्ञात हो, तो क्या मूर्ति कृष्ण बन जाती है?

**श्रील प्रभुपाद :** वह बन नहीं जाती है, नहीं—वह कृष्ण ही है।

**बाँब :** मूर्ति कृष्ण है, किन्तु तभी जब आपको विधि ज्ञात हो?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। ठीक इस विद्युत के तार की भाँति—यह विद्युत है। जिसे प्रक्रिया ज्ञात है, वह इससे विद्युत प्राप्त कर सकता है।

**श्यामसुन्दर :** अन्यथा यह तार मात्र है।

**श्रील प्रभुपाद :** तार मात्र है।

**बाँब :** अतः यदि मैं कृष्ण की एक मूर्ति बनाऊँ तो यह तब तक कृष्ण नहीं है जब तक...

**श्रील प्रभुपाद :** वह कृष्ण है। किन्तु आपको यह समझने की प्रक्रिया ज्ञात होनी चाहिए कि वह कृष्ण है। वह कृष्ण ही है।

**बाँब :** वह केवल मिट्टी मात्र नहीं है।

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं। कृष्ण के बिना मिट्टी का कोई अलग अस्तित्व नहीं है। कृष्ण कहते हैं, “धरती मेरी शक्ति है।” आप

शक्ति को शक्तिमान् से विलग नहीं कर सकते हैं। यह सम्भव नहीं है। आप अग्नि से ताप को विलग नहीं कर सकते हैं। किन्तु अग्नि ताप से तथा ताप अग्नि से भिन्न है। आप ताप ले रहे हैं, इसका अर्थ यह नहीं है कि आप अग्नि को स्पर्श कर रहे हैं। ताप विकीर्ण करने पर भी अग्नि अपना अस्तित्व बनाए रखता है।

इसी तरह यद्यपि अपनी विभिन्न शक्तियों के द्वारा कृष्ण प्रत्येक वस्तु का निर्माण कर रहे हैं वे कृष्ण ही रहते हैं। मायावादी दार्शनिक समझते हैं कि यदि कृष्ण सब कुछ हैं, तब कृष्ण का अलग स्वरूप समाप्त हो जाता है। यह भौतिकतावादी विचार है। उदाहरण के लिए, थोड़ा-थोड़ा कर के इस दूध का पान करने से, जब यह समाप्त हो जाता है तब और दूध नहीं रहता है। वह मेरे उदर में चला जाता है। कृष्ण इसके समान नहीं हैं। वे सर्वशक्तिमान् हैं। हम सतत् रूप से उनकी शक्ति का उपयोग कर रहे हैं फिर भी वे उपस्थित हैं।

ऐसा नहीं है कि सैकड़ों सन्तानों को उत्पन्न करने के कारण वह समाप्त हो गया है। इसी भाँति अपनी असंख्य सन्तानें होने पर भी भगवान् अथवा कृष्ण का अस्तित्व बना रहता है। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। “क्योंकि वे परिपूर्ण हैं; यद्यपि इतनी अधिक पूर्ण इकाइयाँ उनसे निकलती हैं, तथापि वे पूर्ण ही शेष रहते हैं।” यह कृष्णभावनामृत है। कृष्ण का कभी अन्त नहीं होता है। कृष्ण इतने शक्तिमान् हैं। अतएव वे सर्वाकर्षक हैं। यह कृष्ण की शक्ति के प्रदर्शन का एक पक्ष है। इसी भाँति उनकी अनन्त शक्तियाँ हैं। कृष्ण की इस शक्ति का अध्ययन एक पक्ष मात्र है अथवा एक अंश का अध्ययन मात्र है। इस रीति से यदि आप कृष्ण का अध्ययन करते रहें, तब वह कृष्णभावनामृत है। यह एक मिथ्या वस्तु नहीं है—“हो सकता है।” “सम्भवतः” नहीं। पूर्णरूप से! यह है!

श्यामसुन्दर : और अध्ययन भी कभी समाप्त नहीं होता है।

श्रील प्रभुपाद : नहीं। कैसे हो सकता है? कृष्ण की शक्ति अनन्त है।

दो

## वैदिक संस्कृति—वर्णाश्रम-धर्म

फरवरी २८, १९७२

**बाँब :** मैंने भक्तों से प्रश्न किया है कि अपने सम्बन्धों में मैथुन के प्रति उनकी कैसी अनुभूति है। उन्हें जैसा अनुभव होता है उसे मैं समझता हूँ, किन्तु मैं उसी प्रकार से व्यवहार नहीं कर सकता हूँ। देखिए, इस ग्रीष्म ऋतु के अन्त में मैं विवाह करने वाला हूँ।

**श्रील प्रभुपाद :** हूँ ?

**बाँब :** इस ग्रीष्म ऋतु के अन्त में, सितम्बर अथवा अगस्त माह में जब मैं अमरीका वापस जाऊँगा, तब मेरा विवाह होगा। भक्तगण कहते हैं कि गृहस्थ केवल सन्तान प्राप्ति के लिए संभोग करते हैं, किन्तु मैं ऐसी स्थिति में अपनी कल्पना भी नहीं कर सकता हूँ, तथा इस भौतिक जगत् में रहते हुए व्यक्ति किस प्रकार का यौनजीवन व्यतीत कर सकता है ?

**श्रील प्रभुपाद :** वैदिक सिद्धान्त यह है कि व्यक्ति को यौन-जीवन से पूर्ण रूप से बचना चाहिए। भौतिक बन्धन से मुक्ति प्राप्त करना ही सम्पूर्ण वैदिक सिद्धान्त है। भौतिक सुख के लिए विभिन्न उपकरण हैं, जिनमें से कामजीवन सर्वोच्च सुख है। *भागवतम्* का कहना है कि यह भौतिक जगत्... *पुंसः स्त्रिया मिथुनी-भावमेतम्* पुरुष स्त्री से तथा स्त्री पुरुष से आसक्त होती है। ऐसा न केवल मानव समाज में होता है, अपितु पशुसमाज में भी होता है। यह

आसक्ति भौतिक जीवन का आधारभूत सिद्धान्त है। अतः स्त्री पुरुष की संगति की लालसा रखती है तथा पुरुष स्त्री की संगति की लालसा रखता है। समस्त काल्पनिक उपन्यास, नाटक, चित्रपट तथा साधारण विज्ञापन भी पुरुष तथा स्त्री के मध्य उपस्थित पारस्परिक आसक्ति को दर्शाते हैं। दर्जी की दुकान की खिड़की में भी आपको कोई न कोई पुरुष अथवा स्त्री दृष्टिगोचर होंगे। *प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफलाम्।* इस प्रकार यह आसक्ति पहले से ही है।

**बाँब :** स्त्री और पुरुष के मध्य आसक्ति ?

**श्रील प्रभुपाद :** स्त्री और पुरुष। अतः यदि आप इस भौतिक जगत् से मुक्ति चाहते हैं, तब उस आसक्ति को शून्य कर देना चाहिए। अन्यथा, केवल और अधिक आसक्ति—आपको पुनर्जन्म लेना होगा, एक मानव के रूप में अथवा देवता या पशु, सर्प, पक्षी या एक वन्य पशु के रूप में आपको जन्म लेना पड़ेगा।

आसक्ति को बढ़ाने के इस आधारभूत सिद्धान्त से हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। यद्यपि साधारणतया लोगों की यही प्रवृत्ति है। गृह, क्षेत्र, सुत (पुत्र) किन्तु यदि कोई इसे कम करके रोक सकता है, तब वह अत्युत्तम है। अतएव एक बालक को सर्वप्रथम ब्रह्मचारी के रूप में, यौन-जीवन रहित प्रशिक्षित करना ही हमारी वैदिक प्रणाली है। आसक्ति को कम करना वैदिक सिद्धान्त है—उसमें वृद्धि करना नहीं। अतएव सम्पूर्ण प्रणाली को वर्णाश्रम-धर्म कहते हैं। भारतीय प्रणाली वर्ण तथा आश्रम—चार सामाजिक वर्ग तथा चार आध्यात्मिक वर्गों को मानती है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास—ये चार आध्यात्मिक वर्ग हैं। सामाजिक वर्गों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र का समावेश है। इस प्रकार इस

प्रणाली के अन्तर्गत विधि-विधान इतने उत्तम हैं कि यदि व्यक्ति की प्रवृत्ति भौतिक जीवन का सुखोपभोग करने की भी होती है, तब भी उसे इतनी उत्तमता से ढाला जाता है कि अन्ततः वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है तथा अपने घर, भगवान् के धाम, लौट जाता है। यही प्रक्रिया है। इस प्रकार यौन-जीवन आवश्यक नहीं है, किन्तु हमें इसके प्रति आसक्ति होती है, अतएव कुछ ऐसे विधिविधान हैं जिनके अन्तर्गत ऐसा जीवनयापन किया जा सकता है। (तुरही के उच्च स्वर तथा हंसी के मध्य मृदंग की अलौकिक थापों सहित पीछे कहीं से मन्त्रोच्चार प्रारम्भ होता है।)

**श्रील प्रभुपाद :** श्रीमद्भागवतम् (५.५.८) में कहा गया है कि—

*पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः ।*

*अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैर्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति ॥*

स्त्री अथवा पुरुष के प्रति आकर्षण—यह यौन-जीवन संपूर्ण जीवन भौतिक जीवन का आधारभूत सिद्धान्त है। और जब वे मिल जाते हैं—जब एक पुरुष तथा स्त्री मिल जाते हैं, तब उस आसक्ति की वृद्धि होती है तथा वह अभिवृद्ध आकर्षण व्यक्ति को गृह, क्षेत्र, सुत (सन्तान), आप्त (मैत्री अथवा समाज) तथा वित्त के संग्रह के लिए प्रेरित करता है। वित्त का अर्थ है धन। इस प्रकार गृह-क्षेत्र-सुताप्त-वित्तेः—वह आबद्ध हो जाता है। जनस्यमोहोऽयम्, यह माया है। तथा इस माया के द्वारा वह विचार करता है कि अहं ममेति—“मैं यह शरीर हूँ तथा इस शरीर से सम्बन्धित कोई भी वस्तु मेरी है।”

**बाँब :** इसका क्या अर्थ है ?

**श्रील प्रभुपाद :** यह आसक्ति की अभिवृद्ध होती है। भौतिक आसक्ति में यह विचार होता है, “मैं यह शरीर हूँ तथा मेरा यह शरीर किसी स्थान विशेष में है, यह मेरा देश है।” वह विचार चलता रहता है, “मैं अमरीकी हूँ, मैं भारतीय हूँ, मैं जर्मन हूँ, मैं यह हूँ, मैं वह हूँ—अर्थात् यह शरीर। यह मेरा देश है। मैं अपने देश तथा समाज के लिए सर्वस्व बलिदान करूँगा।” इस प्रकार भ्रम में वृद्धि होती है तथा इस भ्रम के अन्तर्गत उसे मृत्यु के उपरान्त एक अन्य शरीर की प्राप्ति होती है। उसके कर्मानुसार वह एक श्रेष्ठतर अथवा निम्नतर शरीर पा सकता है। अतः यदि उसे श्रेष्ठतर शरीर की प्राप्ति होती है तथा यदि उसे स्वर्ग की प्राप्ति हो तब भी, वह एक बन्धन है। किन्तु यदि वह एक कुत्ता अथवा बिल्ली बन जाता है, तब तो उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है। अथवा एक वृक्ष—इसकी पूरी सम्भावना है।

यह विज्ञान इस जगत् को ज्ञात नहीं है कि आत्मा किस प्रकार एक शरीर से दूसरे शरीर में देहान्तरण कर रहा है तथा किस प्रकार वह विभिन्न प्रकार के शरीरों में बंध रहा है। यह विज्ञान अज्ञात है। अतएव जब अर्जुन कह रहे थे कि—“यदि मैं विपक्ष में अपने भ्राता, अपने पितामह का वध करूँ ...” तब वे जीवन की केवल दैहिक धारणा के आधार पर विचार कर रहे थे। किन्तु जब उनकी समस्याएँ सुलझ न सकीं, तब उन्होंने कृष्ण की शरण ली तथा उन्हें अपना आध्यात्मिक गुरु स्वीकार किया। जब कृष्ण अर्जुन के आध्यात्मिक गुरु बने, तब प्रारम्भ में उन्होंने अर्जुन को डाँटा—

*अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।*

*गतासूनगतासूँश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥*



“तुम पण्डित के समान बात करते हो किन्तु अत्यन्त मूर्ख हो क्योंकि तुम जीवन की दैहिक धारणा के विषय में बात कर रहे हो।” अतः यह यौन जीवन, जीवन की दैहिक धारणा में अभिवृद्धि करता है। अतएव समस्त प्रक्रिया इसको कम करके शून्य करने के लिए है।

**बाँब :** अपने जीवन के विभिन्न स्तरों पर इसे कम करना ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। इसे कम करना। पच्चीस वर्ष तक यौन जीवन को प्रतिबन्धित करके बालक को विद्यार्थी के रूप में प्रशिक्षित किया जाता है। ब्रह्मचारी। उनमें से कुछ बालक नैष्ठिक-ब्रह्मचारी रहते हैं (आजीवन ब्रह्मचारी)। वे शिक्षा प्राप्त करके आध्यात्मिक ज्ञान में पूर्ण रूप से निष्णात हो जाते हैं; अतएव वे विवाह नहीं करना चाहते हैं। यह भी प्रतिबन्धित है—वह विवाह के बिना संभोग नहीं कर सकता है। इसीलिए मानव समाज में विवाह का विधान है; पशु समाज में नहीं।

किन्तु लोग शनैः शनैः मानव समाज से पशुसमाज की ओर अधोगमन कर रहे हैं। वे विवाह को विस्मृत कर रहे हैं। शास्त्रों में इसकी भी भविष्यवाणी की गई है। *दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुः—* कलियुग (कलह के वर्तमान युग) में अन्ततः विवाह सम्पन्न नहीं होंगे; लड़का व लड़की मात्र साथ-साथ रहना स्वीकार करेंगे तथा उनके सम्बन्ध का अस्तित्व यौन-शक्ति पर आधारित होगा। यदि पुरुष अथवा स्त्री के यौन-जीवन में कमी है, तब विवाह-विच्छेद (तलाक) होता है। इस दर्शन पर फ्रायड तथा अनेकों पाश्चात्य दार्शनिकों ने कई पुस्तकें लिखी हैं। किन्तु वैदिक सभ्यता के अनुसार सन्तानोत्पत्ति के लिए ही हमारी संभोग में रुचि होनी चाहिए, यौनजीवन के मनोविज्ञान का अध्ययन करने के लिए नहीं।

उसके लिए प्राकृतिक मनोविज्ञान पहले से ही है। यदि व्यक्ति कोई भी दर्शन नहीं पढ़ता है, तब भी यौन के प्रति उसका सहज झुकाव होता है। किसी को भी विद्यालयों तथा कॉलेजों में इसकी शिक्षा नहीं दी जाती है। यह कैसे करना है यह सबको पहले से ही ज्ञात होता है। (हँसते हैं) यह सामान्य प्रवृत्ति है। किन्तु इसे रोकने के लिए शिक्षा दी जानी चाहिए। वह वास्तविक शिक्षा है।

**बाँब :** आजकल, अमरीका में, यह एक मौलिक धारणा है।

**श्रील प्रभुपाद :** अमरीका में ऐसी अनेकों वस्तुएँ हैं जिनमें सुधार की आवश्यकता है तथा यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन इन में सुधार करेगा। मैं आपके देश गया था; वहाँ मैंने देखा कि लड़के-लड़कियाँ मित्रों के समान रह रहे थे। अतः मैंने अपने अनुयायीओं से कहा, “तुम मित्रों की भाँति साथ-साथ नहीं रह सकते; तुम्हें विवाह करना चाहिए।”

**बाँब :** अनेक लोग देखते हैं कि विवाह भी पावन नहीं है; अतएव उन्हें विवाह करने की इच्छा नहीं होती है। क्योंकि लोग विवाह करते हैं तथा यदि उचित सामंजस्य नहीं होता है, तो वे अत्यन्त सरलता से विवाह-विच्छेद (तलाक) कर लेते हैं।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, यह भी है।

**बाँब :** कुछ लोगों को प्रतीत होता है कि विवाह करने का कोई अर्थ नहीं है।

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं, उनकी धारणा है कि विवाह वैधानिक वेश्यावृत्ति के लिए है। वे ऐसा सोचते हैं किन्तु यह विवाह नहीं है। उस ईसाई समाचार पत्र ने भी...क्या है वह ? वाँच... ?

**श्यामसुन्दर :** वाँचटॉवर ?

**श्रील प्रभुपाद :** वॉचटॉवर। उसमें आलोचना की है कि एक पादरी ने दो पुरुषों के मध्य विवाह की अनुमति दी है—समलैंगिक मैथुन। इस प्रकार की अनेक बातें हो रही हैं। वे इसे (विवाह को) केवल वेश्यावृत्ति के लिए ही मानते हैं, बात यही है। अतएव लोग सोचते हैं। “इतना अधिक व्यय करके एक नियमित वेश्या रखने से क्या लाभ? इसका न होना ही श्रेष्ठ है।”

**श्यामसुन्दर :** आप गाय तथा बाजार के उस दृष्टान्त का उपयोग करते हैं।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, जब बाजार में दूध उपलब्ध है, तब गाय रखने का क्या उपयोग? (सब लोग हंसते हैं) पाश्चात्य देशों में यह एक अत्यन्त निन्दनीय स्थिति है। मैंने इसे देखा है। यहाँ भारत में भी धीरे-धीरे यह प्रथा आ रही है। अतएव लोगों को आध्यात्मिक जीवन के आवश्यक सिद्धान्तों में शिक्षित करने के लिए हमने इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन को प्रारम्भ किया है। यह एक साम्प्रदायिक धार्मिक आन्दोलन नहीं है। सबके लाभ के लिए यह एक सांस्कृतिक आन्दोलन है।

तीन

## जीवन का वास्तविक लक्ष्य

फरवरी २८, १९७२ (क्रमशः)

**श्रील प्रभुपाद :** यह आन्दोलन विशेषरूप से मानव को जीवन के वास्तविक लक्ष्य तक पहुँचने में सक्षम बनाने के लिए है।

**बाँब :** वास्तविक लक्ष्य... ?

**श्रील प्रभुपाद :** जीवन का वास्तविक लक्ष्य।

**बाँब :** क्या जीवन का वास्तविक लक्ष्य ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना है ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। अपने घर, भगवान् के धाम वापस लौटना। यही जीवन का वास्तविक लक्ष्य है। सागर से आने वाला जल मेघों की रचना करता है; मेघ जल के रूप में बरसते हैं तथा नदी के साथ बह कर पुनः सागर में प्रवेश करना इस प्रक्रिया का वास्तविक लक्ष्य है। हम सब भगवान् से निकले हैं तथा अब हम भौतिक जीवन से बाधित हैं। अतएव इस बद्ध स्थिति से निकल कर अपने घर, भगवान् के धाम, वापस लौटना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। यही जीवन का वास्तविक लक्ष्य है।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।

नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥

यह भगवद्गीता का मत है। “यदि कोई मेरे समीप आता है, वह फिर वापस नहीं लौटता।” कहाँ? “इस स्थान को

दुःखालयमशाश्वतम् कहते हैं।" यह स्थान दुःखों का घर है। यह तथ्य सबको ज्ञात है, किन्तु उन्हें तथाकथित नेताओं ने मूर्ख बना दिया है। भौतिक जीवन दुःखी जीवन है। भगवान् अर्थात् श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह स्थान दुःखालयम् है—यह दुःखों का स्थान है। तथा यह अशाश्वतम् भी है—अनित्य है। आप समझौता नहीं कर सकते हैं—“ठीक है, यह दुःख पूर्ण है तो होने दीजिए। मैं यहाँ एक अमरीकी अथवा भारतीय की भाँति रहूँगा।” नहीं। आप ऐसा भी नहीं कर सकते हैं। आप एक अमरीकी ही नहीं रह सकते हैं। आप ऐसा सोच सकते हैं कि अमरीका में जन्म ले कर आप अत्यन्त सुखी हैं। किन्तु आप अधिक समय तक एक अमरीकी नहीं रह सकते हैं। आप को वहाँ से बहिष्कृत होना पड़ेगा। तथा आपके अगले जन्म के विषय में आपको कुछ भी ज्ञान नहीं है! अतएव, यह दुःखालयमशाश्वतम् है—दुःखमय तथा अनित्य। यह हमारा दर्शन है।

**बाँब :** किन्तु जब आपको भगवान् के विषय में कुछ ज्ञान होता है, तब जीवन इतना दुःखमय नहीं होता है ?

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं! अल्प ज्ञान से काम नहीं चलेगा। आपको पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। *जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः। तत्त्वतः* का अर्थ है “पूर्ण रूप से।” *भगवद्गीता* में पूर्ण ज्ञान की शिक्षा दी जा रही है। अतः हम मानव समाज में प्रत्येक व्यक्ति को *भगवद्गीता* यथारूप को सीखने तथा अपने जीवन को पूर्ण बनाने का अवसर प्रदान कर रहे हैं। यही कृष्णभावनामृत आन्दोलन है। आत्मा के देहान्तरण के विषय में आपका विज्ञान क्या कहता है ?

**बाँब :** मेरा विचार है कि विज्ञान न तो इसकी पुष्टि कर सकता है न खण्डन। विज्ञान को इसका ज्ञान नहीं है।

**श्रील प्रभुपाद :** अतएव मैं कहता हूँ कि विज्ञान अपूर्ण है।

**बाँब :** विज्ञान भी कुछ कह सकता है। विज्ञान में कहा गया है कि ऊर्जा का कभी नाश नहीं होता है, उसका रूपान्तर होता है।

**श्रील प्रभुपाद :** वह ठीक है। किन्तु विज्ञान को यह ज्ञात नहीं है कि भविष्य में ऊर्जा किस प्रकार कार्य कर रही है। ऊर्जा किस प्रकार व्यपवर्तित होती है। किस प्रकार भिन्न-भिन्न क्रियाकौशल द्वारा ऊर्जा भिन्न प्रकार से कार्य कर रही है ? उदाहरण के लिए, विद्युत शक्ति। भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रयोग करने के द्वारा यह हीटर तथा रेफ्रिजरेटर दोनों को चला रही है। वे दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं किन्तु विद्युत शक्ति वही है। उसी तरह यह ऊर्जा—प्राण शक्ति—यह किस प्रकार निर्देशित हो रही है ? यह किस दिशा में जा रही है ? यह किस प्रकार अगले जन्म में फलित हो रही है ? उन्हें इसका ज्ञान नहीं है। किन्तु *भगवद्गीता* में इसे अत्यन्त सुगम रूप से कहा गया है। *वासांसि जीर्णानि यथा विहाय।* आपने एक वस्त्र—एक कमीज पहनी है। जब यह कमीज उपयोग के योग्य नहीं रहती है, तब आप इसे बदल देते हैं। उसी भाँति यह शरीर भी ठीक एक कमीज या कोट की भाँति है। जब यह कार्य करने योग्य नहीं रहता है, तब हमें इसे बदलना पड़ता है।

**बाँब :** वह “हम” क्या है जिसे बदलने की क्रिया करनी होती है ? कौन-सी वस्तु निरन्तर रहती है ?

**श्रील प्रभुपाद :** वह आत्मा है।

**बाँब :** एक जीवन से अगले जीवन तक ?

**श्रील प्रभुपाद :** वह आत्मा है—मैं। कौन सा “आप” बोल रहा है ? आप! कौन सा “मैं” बोल रहा है ? उसका परिचय है आत्मा।

**बाँब :** मेरा आत्मा आपके आत्मा से भिन्न है ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। आप एक व्यष्टि आत्मा हैं; मैं एक व्यष्टि आत्मा हूँ।

**बाँब :** आपने स्वयं को कर्म के प्रभावों से विलग कर लिया है। यदि मैं स्वयं को कर्म के प्रभावों से विलग कर लूँ तो हमारे आत्मा अभिन्न रहेंगे या भिन्न-भिन्न ?

**श्रील प्रभुपाद :** सब जीवों में एक ही गुण-धर्म वाला आत्मा रहता है। वर्तमान क्षण में आप जीवन की एक निश्चित धारणा के अन्तर्गत हैं, तथा यह आपके देशवासी (कृष्णभावनाभावित भक्त) जीवन की एक निश्चित धारणा के अन्तर्गत थे। किन्तु प्रशिक्षण के द्वारा उन्होंने जीवन की एक अन्य धारणा को अंगीकार कर लिया है। अतः चरम प्रशिक्षण यह है कि कृष्णभावनाभावित किस प्रकार बना जाए। वही पूर्णता है।

**बाँब :** यदि दो व्यक्ति कृष्णभावनाभावित हों, तब क्या उनका आत्मा एक प्रकार का ही होता है ?

**श्रील प्रभुपाद :** आत्मा सदैव समान ही होता है।

**बाँब :** प्रत्येक व्यक्ति में? क्या प्रत्येक व्यक्ति में यह वैसा ही होता है ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ।

**बाँब :** (दो भक्तों की ओर इंगित करके) यदि ये दोनों कृष्णभावनामय हैं, तब क्या इनके आत्मा समान हैं ?

**श्रील प्रभुपाद :** आत्मा समान होता है, किन्तु सदैव ही व्यक्तिगत होता है, कोई व्यक्ति कृष्णभावनामय न हो, तब भी। उदाहरण के लिए, आप एक मानव है तथा मैं भी एक मानव हूँ। यदि मैं ईसाई नहीं हूँ तथा आप हिन्दू नहीं हैं, तब भी हम मानव हैं। इसी भाँति आत्मा कृष्णभावनाभावित हो सकता है अथवा नहीं भी हो सकता

है, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। किन्तु आत्मा तो आत्मा ही है।

**बाँब :** क्या आप इस विषय में मुझे और अधिक बता सकते हैं ?

**श्रील प्रभुपाद :** विशुद्ध जीवनसत्त्व के रूप में, समस्त आत्माएँ बराबर हैं। एक पशु में भी। अतएव कहा गया है *पण्डिताः समदर्शिनः*—जो वास्तव में पण्डित हैं, वे बाह्य आवरण को नहीं देखते हैं, चाहे वह पशु में हो अथवा मानव में।

**बाँब :** क्या मैं इस पर एक प्रश्न कर सकता हूँ ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ।

**बाँब :** मैंने आत्मा को भगवान् के अंश के रूप में माना है। कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि मैं भगवान् को अनुभव करता हूँ। मैं यहाँ हूँ, और आप कह सकते हैं कि भगवान् यहाँ हैं। अतः यदि आत्मा मेरे अन्दर है, तब क्या मुझे अपने अन्दर भगवान् को अनुभव करने में समर्थ होना चाहिए? सम्पूर्ण भगवान् नहीं, मेरा तात्पर्य है कि एक...

**श्रील प्रभुपाद :** भगवान् का एक अंश।

**बाँब :** किन्तु मैं अपने में भगवान् को अनुभव नहीं करता हूँ, किन्तु भगवान् यहाँ हो सकते हैं, विलग—मुझसे विलग। किन्तु क्योंकि मेरा आत्मा भगवान् का अंश है अतएव क्या मुझे अपने अन्दर भगवान् की अनुभूति होनी चाहिए ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। भगवान् अन्दर भी हैं। भगवान् सर्वत्र हैं। भगवान् अन्दर हैं, बाहर भी हैं। यह ज्ञात होना चाहिए।

**बाँब :** आपको अपने भीतर भगवान् की अनुभूति किस प्रकार होती है ?

**श्रील प्रभुपाद :** प्रारम्भ में नहीं होती है, किन्तु आपको शास्त्रों (धर्मग्रन्थों), वैदिक ज्ञान से ज्ञात करना चाहिए। उदाहरण के लिए

भगवद्गीता में कहा गया है, ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति— भगवान् प्रत्येक प्राणी के हृदय में हैं। परमाणु-चयान्तचरस्थम्— भगवान् प्रत्येक अणु में भी हैं। यह प्राथमिक ज्ञान है। तत्पश्चात् यौगिक प्रक्रिया से आपको इसका साक्षात्कार करना होता है।

**बाँब :** यौगिक प्रक्रिया ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ।

**बाँब :** क्या हरे कृष्ण का जप ऐसी ही एक प्रक्रिया है ?

**बाँब :** हाँ, यह भी एक यौगिक प्रक्रिया है।

**बाँब :** इस ज्ञान का अनुभव करने के लिए—अन्दर आत्मा का अनुभव करने के लिए—मुझे किस प्रकार की यौगिक प्रक्रिया करनी चाहिए ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, यौगिक प्रक्रियाएँ अनेक हैं, किन्तु इस युग के लिए यह प्रक्रिया अत्यन्त उत्तम है।

**बाँब :** कीर्तन।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ।

**बाँब :** इसके माध्यम से मैं भगवान् को न केवल बाहर अपितु अन्दर भी अनुभव कर सकता हूँ ?

**श्रील प्रभुपाद :** आप भगवान् विषयक प्रत्येक तथ्य समझ जाएँगे— भगवान् किस प्रकार अन्दर हैं, किस प्रकार भगवान् बाहर हैं, तथा भगवान् किस प्रकार कार्य कर रहे हैं। सब कुछ स्पष्ट हो जाएगा। सेवा की इस प्रवृत्ति से भगवान् स्वयं को निरावरण कर देंगे। आप अपने प्रयास से भगवान् को नहीं समझ सकते हैं। यदि भगवान् स्वयं को प्रकट करें, तभी आप उन्हें समझ सकते हैं। उदाहरण के लिए जब रात्रि में सूर्य आपकी दृष्टि से ओझल रहता है, तब आप इसे दीपक के प्रकाश अथवा अन्य किसी प्रकाश के द्वारा नहीं देख सकते

हैं। किन्तु प्रातःकाल आप, बिना किसी दीपक के प्रकाश के, स्वयमेव सूर्य को देख सकते हैं। इसी भाँति आपको ऐसी स्थिति का निर्माण करना होता है—स्वयं को ऐसी स्थिति में डालना होता है—जिसमें भगवान् प्रकट हो जाएँ। ऐसा नहीं है कि किसी विधि से आप भगवान् से कह सकें, “कृपया आइए। मैं आपके दर्शन करूँगा।” नहीं, भगवान् आपके आदेश-वाहक नहीं हैं।

**बाँब :** वे अपने आप को प्रकट करें, इसके लिए आपको भगवान् को प्रसन्न करना होता है। क्या यह ठीक है ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ।

**श्यामसुन्दर :** हमें यह कैसे पता चले कि हम भगवान् को कब प्रसन्न कर रहे हैं ?

**श्रील प्रभुपाद :** जब हमें उनके दर्शन हों। तब आप समझ जाएँगे, ठीक वैसे ही जैसे, जब आप भोजन करते हैं तब आपको किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ती कि आपको शक्ति का अनुभव हो रहा है या नहीं अथवा आपकी क्षुधा सन्तुष्ट हुई या नहीं। जब आप भोजन करते हैं, तब आप समझ जाते हैं कि आपको शक्ति का अनुभव हो रहा है। आपको किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं होती है। इसी भाँति यदि आप वास्तव में भगवान् की सेवा करें, तब आप समझ जाएँगे, “भगवान् मुझे आदेश दे रहे हैं। भगवान् हैं। मैं भगवान् के दर्शन कर रहा हूँ।”

**एक भक्त :** अथवा भगवान् के प्रतिनिधि के।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ।

**भक्त :** यह अधिक आसान है।

**श्रील प्रभुपाद :** आपको भगवान् के प्रतिनिधि के माध्यम से जाना पड़ता है। *यस्य प्रसादाद्भगवत्प्रसादः।* यदि आप भगवान् के

प्रतिनिधि को प्रसन्न करते हैं, तब भगवान् स्वयंमेव प्रसन्न हो जाते हैं, तथा इस प्रकार आप उनके प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं।

**बाँब :** भगवान् के प्रतिनिधि को किस प्रकार प्रसन्न करें ?

**श्रील प्रभुपाद :** आपको उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए, बस यही। भगवान् के प्रतिनिधि गुरु हैं। वे आपको यह, वह करने को कहते हैं—यदि आप वैसा करें तो यह प्रसन्न करना होता है। *यस्याप्रसादान् न गतिः कुतोऽपि।* यदि आप उन्हें अप्रसन्न कर दें, तब आप कहीं के भी नहीं रह जाते। अतएव हम गुरु की उपासना करते हैं। *साक्षाद्धरित्वेन समस्त-शास्त्रैरुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।* गुरु को भगवान् के रूप में स्वीकार करना चाहिए। समस्त शास्त्रों का यही आदेश है।

**बाँब :** गुरु को भगवान् के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करना चाहिए ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, गुरु भगवान् के प्रतिनिधि हैं। गुरु कृष्ण के बहिरंग रूप हैं।

**बाँब :** किन्तु कृष्ण के अवतरित होने वाले अवतारों से भिन्न ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ।

**बाँब :** जब वे पृथ्वी पर आते हैं, तब कृष्ण अथवा चैतन्य महाप्रभु के बहिरंग रूपों से गुरु का बहिरंग रूप किस प्रकार भिन्न होता है ?

**श्रील प्रभुपाद :** गुरु कृष्ण के प्रतिनिधि हैं। अतएव गुरु कौन हैं, इसके लक्षण हैं। सामान्य लक्षणों का वर्णन वेदों में किया गया है। *तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।* किसी गुरु को गुरु-शिष्य परंपरा में से होना चाहिए तथा उनको अपने आध्यात्मिक गुरु से, वेदों के विषय में पूर्ण रूप से श्रवण किया होना चाहिए। सामान्यतया गुरु का लक्षण यह है कि वे एक

आदर्श भक्त होते हैं, बस यही। तथा वे कृष्ण के सन्देश का प्रचार करके उनकी सेवा करते हैं।

**बाँब :** भगवान् चैतन्य—वे आपसे भिन्न प्रकार के गुरु थे ?

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं, नहीं। गुरु भिन्न प्रकारों के नहीं हो सकते हैं। समस्त गुरु एक ही प्रकार के होते हैं।

**बाँब :** किन्तु वे थे। वे साथ ही एक अवतार भी थे ?

**श्रील प्रभुपाद :** वे स्वयं कृष्ण हैं, किन्तु वे गुरु का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

**बाँब :** मैं...मैं समझा।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ।

**बाँब :** और तत्पश्चात्...

**श्रील प्रभुपाद :** क्योंकि कृष्ण भगवान् थे, अतएव उन्होंने माँग की—*सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।* “समस्त धर्मों का परित्याग करके केवल मेरी शरण में आओ।” किन्तु लोगों ने उन्हें ठीक से नहीं समझा। अतएव कृष्ण पुनः एक गुरु के रूप में आये तथा लोगों को यह शिक्षा दी कि कृष्ण की शरण में कैसे जाएँ।

**श्यामसुन्दर :** क्या वे भगवद्गीता में यह नहीं कहते हैं, “मैं आध्यात्मिक गुरु हूँ ?”

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, वे आदि आध्यात्मिक गुरु हैं, क्योंकि अर्जुन ने उन्हें आध्यात्मिक गुरु के रूप में स्वीकार किया था। फिर कठिनाई क्या है ? *शिष्यस्तेऽहं शाधि माँ त्वां प्रपन्नम्।* अर्जुन ने भगवान् से कहा, “मैं आपका शिष्य तथा आपका शरणागत एक आत्मा हूँ। कृपया मुझे उपदेश दीजिए।” अतः जब तक वे आध्यात्मिक गुरु न हों, अर्जुन उनके शिष्य कैसे बन सकते हैं ? वे आदि गुरु हैं। *तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये—* “प्रथम सृजित जीव,

ब्रह्माजी के हृदय में उन्होंने ही सर्वप्रथम वैदिक ज्ञान प्रदान किया था।" अतएव वे आदि गुरु हैं।

**बाँब :** कृष्ण।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। वे आदि गुरु हैं। तदनन्तर उनके शिष्य ब्रह्माजी एक गुरु हैं, तदुपरान्त उनके शिष्य नारद जी एक गुरु हैं, तत्पश्चात् उनके शिष्य व्यास जी एक गुरु हैं—इस प्रकार एक गुरु-परम्परा है, गुरुओं की शिष्य परंपरा, एवं परम्पराप्राप्तम्—दिव्य ज्ञान गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से प्राप्त होता है।

**बाँब :** इस प्रकार एक गुरु को गुरु-शिष्य परम्परा से ज्ञान प्राप्त होता है, प्रत्यक्ष कृष्ण से नहीं? क्या आपको प्रत्यक्ष कृष्ण से कुछ ज्ञान प्राप्त होता है?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। कृष्ण का प्रत्यक्ष उपदेश विद्यमान है : *भगवद्गीता*।

**बाँब :** समझा, किन्तु...

**श्रील प्रभुपाद :** किन्तु आपको इसे शिष्य परम्परा के माध्यम से सीखना पड़ता है, अन्यथा आप इसे ठीक-ठीक नहीं समझ सकेंगे।

**बाँब :** किन्तु वर्तमान में आपको सीधे कृष्ण से ज्ञान प्राप्त नहीं होता है? यह गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से पुस्तकों से आता है?

**श्रील प्रभुपाद :** इसमें कोई अन्तर नहीं है। मान लीजिए कि मैं कहूँ कि यह एक पेन्सिल है। यदि आप किसी से कहें, "यह एक पेन्सिल है," तथा यदि वह अन्य किसी व्यक्ति से कहे, "यह एक पेन्सिल है," तब उसके उपदेश तथा मेरे उपदेश में क्या भेद है?

**बाँब :** क्या कृष्ण की दया आपको अभी यह जानने की अनुमति देती है?

**श्रील प्रभुपाद :** आप श्रीकृष्ण की दया को भी ले सकते हैं, केवल इतना होना चाहिए कि उसे यथारूप दिया जाये। ठीक वैसे ही जैसे हम *भगवद्गीता* की शिक्षा दे रहे हैं। *भगवद्गीता* में कृष्ण कहते हैं—*सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज*। "धर्म के अन्य समस्त प्रकारों का परित्याग करके केवल मेरी शरण में आओ।" अब हम कह रहे हैं कि तुम सर्वस्व त्याग कर कृष्ण की शरण में जाओ। अतएव कृष्ण के उपदेश तथा हमारे उपदेश में कोई भेद नहीं है। कोई परिवर्तन नहीं है। अतः यदि आपको उस पूर्ण रीति से ज्ञान प्राप्त होता है, तब वह प्रत्यक्ष कृष्ण से उपदेश प्राप्त करने के समान ही है। किन्तु हम कुछ परिवर्तन नहीं करते हैं।

**बाँब :** जब मैं आदर एवं निष्ठापूर्वक कृष्ण की स्तुति करता हूँ, तब क्या कृष्ण मेरी स्तुति सुनते हैं?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ।

**बाँब :** मुझसे उन तक?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, क्योंकि वे आपके हृदय में हैं, अतएव चाहे आप स्तुति कर रहे हों अथवा नहीं—वे सदैव ही आपकी बात सुनते हैं। जब आप कुछ निरर्थक कर रहे हैं, वे तब भी आपकी सुन रहे होते हैं। जब आप स्तुति करते हैं वह अत्यन्त उत्तम है—आपका स्वागत है।

**बाँब :** क्या कृष्ण के कान के लिए स्तुति की आवाज बकवास से उँची होती है?

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं। वे परम पूर्ण हैं। वे सब कुछ सुन सकते हैं। यदि आप न भी बोलें, यदि आप केवल विचार ही करें, "मैं इसे करूँगा।" तब भी वे आपकी बात सुनते हैं। *सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः*—कृष्ण सबके हृदय में स्थित हैं।

**बाँब :** किन्तु मनुष्य को स्तुति करनी चाहिए—क्या ऐसा है ?

**श्रील प्रभुपाद :** यह उसका एकमात्र कर्तव्य है—स्तुति।

**बाँब :** किसका कर्तव्य ?

**श्रील प्रभुपाद :** प्रत्येक जीव का। यही एकमात्र कर्तव्य है। *एको बहूनां यो विदधाति कामान्*—वेदों का यही कथन है।

**बाँब :** इसका क्या अर्थ है ?

**श्रील प्रभुपाद :** भगवान् सबको प्रत्येक वस्तु की आपूर्ति करते हैं। सबको भोजन देते हैं। अतएव वे पिता हैं। फिर आपको स्तुति क्यों नहीं करनी चाहिए, “पिताश्री, हमें यह प्रदान कीजिए ?” जैसे ईसाइयों की बाइबल में है, “हे पिता! हमें प्रतिदिन का भोजन प्रदान कीजिए।” यह अच्छा है—वे परम पिता को स्वीकार कर रहे हैं। किन्तु वयस्क सन्तान को पिता से नहीं माँगना चाहिए, अपितु उन्हें पिता की सेवा करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। वह भक्ति है।

**बाँब :** आप मेरे प्रश्नों का कितना सुन्दर समाधान करते हैं। (सब लोग स्नेहपूर्वक हंसते हैं।)

**श्रील प्रभुपाद :** धन्यवाद !

**बाँब :** फिर, क्या मैं आपसे एक अन्य प्रश्न करूँ ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। हाँ।

चार

## प्रकृति के तीन गुण

फरवरी २८, १९७२ (क्रमशः)

**बाँब :** मैंने पढ़ा है कि जीवन में रजस्, तमस् तथा सत्त्व नामक तीन गुण होते हैं। मेरी इच्छा थी कि आप इसे थोड़ा स्पष्ट करें, विशेष रूप से यह कि तमोगुण तथा सत्त्वगुण से क्या अभिप्राय है।

**श्रील प्रभुपाद :** सत्त्वगुण में आप वस्तुओं को समझ सकते हैं—ज्ञान। आपको ज्ञात हो सकता है कि भगवान् हैं और इस जगत् की रचना भगवान् ने की थी तथा अनेकों अन्य बातें—वास्तविक तथ्य—सूर्य यह है, चन्द्र यह है—पूर्ण ज्ञान। यदि व्यक्ति को थोड़ा ज्ञान हो, चाहे वह पूर्ण न भी हो, तो वह सत्त्वगुण है। रजोगुण में व्यक्ति अपने भौतिक शरीर को स्वयं समझता है तथा अपनी इन्द्रियों को तृप्त करने का प्रयास करता है। वह रजोगुण है। तमोगुण पशु जीवन है। उसमें व्यक्ति को यह ज्ञात नहीं होता है कि भगवान् क्या है, सुखी कैसे हों, हम इस जगत् में क्यों आए हैं। उदाहरण के लिए यदि आप एक पशु को वधशाला में ले जाएँ, तो वह चला जाएगा। यह तमोगुण है। किन्तु एक मानव विरोध करेगा। यदि एक बकरे का पाँच मिनट बाद वध किया जाना हो किन्तु आप इसे एक ग्रास घास दें तब वह प्रसन्न हो जाता है, क्योंकि वह भोजन कर रहा होता है। ठीक एक बालक के समान—आप यदि उसे मारने की योजना भी बना रहे हों फिर भी वह प्रसन्न है तथा हँसता है, क्योंकि वह अबोध है। यह तमोगुण है।



**बाँब :** इन गुणों में आपकी स्थिति आपके कर्म को निर्धारित करती है। क्या यह ठीक है ?

**श्रील प्रभुपाद :** प्रकृति के गुणों के सम्पर्क के अनुसार आपके कर्म दूषित हो रहे हैं। *कारणं गुण-संगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु*—“गुणों अर्थात् प्रकृति के गुणों के संपर्क के अनुसार मानव को उच्च अथवा निम्न योनि प्राप्त होती है।”

**बाँब :** फिर छल इत्यादि—वह कौन-सा गुण है ?

**श्रील प्रभुपाद :** छल रजस् तथा तमस् का मिश्रण है। मान लीजिए कि एक व्यक्ति दूसरे को ठगता है। इसका अर्थ यह है कि वह कुछ प्राप्त करना चाहता है; वह रजोगुणी है। किन्तु यदि वह हत्या करता है, तो उसे यह ज्ञात नहीं होता कि उसे इसका दण्ड भोगना होगा, अतः यह रजस् तथा तमस् का मिश्रण है।

**बाँब :** किन्तु जब कोई किसी अन्य व्यक्ति की सहायता करता है, तब ?

**श्रील प्रभुपाद :** वह सतोगुण है।

**बाँब :** वह सतोगुण क्यों है ? वह किस प्रकार की बुद्धि है ? मेरा तात्पर्य है कि यह किस वस्तु का ज्ञान है ? आपने कहा कि सतोगुण तब है जब आपको ज्ञान होता है।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ।

**बाँब :** बुद्धि।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ।

**बाँब :** फिर अन्य व्यक्ति की सहायता करना ?

**श्रील प्रभुपाद :** इसका अर्थ यह है कि वह अज्ञानी है तथा आप उसे ज्ञान देने का प्रयास कर रहे हैं।

**बाँब :** इस प्रकार बुद्धि दे रहे हैं...

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। वह सत्त्वगुण है।

**बाँब :** केवल सहारा दें तो ?

**श्रील प्रभुपाद :** वह भी सत्त्वगुण है।

**बाँब :** यदि किसी भिकारी के पास कुछ न हो तथा आप उसे भिक्षा दें...

**श्रील प्रभुपाद :** वह भी सत् हो सकता है। किन्तु आपके बाँकरी स्ट्रीट में, लोग कुछ दान देते हैं तथा वह याचक तत्काल मदिरा की एक बोतल खरीद कर पी जाता है और सो जाता है। (सब हँसते हैं) वह दान है, किन्तु सत्त्वगुणी नहीं है, वह तमोगुणी है।

**बाँब :** दान तमोगुणी है ?

**श्रील प्रभुपाद :** दान तीन प्रकार के होते हैं—सात्त्विक, राजसी तथा तामसी। सुपात्र को दान देना सात्त्विक है। जैसे यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन—यदि कोई इस आन्दोलन को दान दे वह सात्त्विक है, क्योंकि यह आन्दोलन भगवद्भावना का, कृष्णभावनामृत का प्रसार कर रहा है। वह सात्त्विक है। यदि कोई व्यक्ति कुछ प्राप्त करने के लिए दान देता है, तब वह राजसी है। यदि कोई व्यक्ति अनुचित देश काल में, निरादरपूर्वक, कुपात्र को दान देता है, ठीक बाँवरी स्ट्रीट के आदमी के समान, वह तामसी है। किन्तु कृष्ण कहते हैं—*यत्करोषि यदश्नासि यच्चुहोषि ददासि यत्*—“तुम जो कुछ कर्म करते हो, जो कुछ खाते हो, जो कुछ दान करते हो और जो तपस्या करते हो, वह सब मुझे अर्पण करो।” यदि कृष्ण ग्रहण करते हैं, तब वह दान की पूर्णता है। अथवा यदि कोई ऐसा व्यक्ति ग्रहण करे जो कृष्ण का प्रतिनिधि है, तब वह दान की पूर्णता है।

**बाँब :** जब आप किसी भूखे को भोजन देते हैं, वह किस प्रकार का दान है ?

**श्रील प्रभुपाद :** वह परिस्थितियों पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, एक वैद्य ने अपने रोगी को ठोस आहार लेना वर्जित किया है, तथा यदि रोगी माँग रहा है, “मुझे कुछ ठोस आहार दो,” तथा यदि आप उसे दान में ठोस आहार दें तो आप उसका भला नहीं कर रहे हैं। वह दान तमोगुणी है।

**बाँब :** क्या भक्त कर्म संग्रह से ऊपर है ? ये भक्त...क्या इन्हें कर्म का अनुभव होता है ? क्या वे इन गुणों में कार्य करते हैं ? क्या वे सत्त्वगुण में स्थित है ?

**श्रील प्रभुपाद :** वे सत्त्वगुण से परे हैं ! शुद्ध सत्त्व। भक्त इस भौतिक जगत् में नहीं हैं। वे आध्यात्मिक जगत् में हैं। यह भगवद्गीता में कहा गया है—

*मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।*

*स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥*

[“जो पूर्ण रूप से मेरी भक्तिमय सेवा में संलग्न रहता है, जो किसी भी स्थिति में उससे विमुख नहीं होता, वह अविलम्ब भौतिक प्रकृति के गुणों को पार करके ब्रह्मभूत स्तर पर आ जाता है।”] भक्त न तो सत्त्वगुण में हैं, न ही रजोगुण अथवा तमोगुण में। वे इन त्रिगुणों से परे हैं।

**बाँब :** जो भक्त अत्यन्त निष्ठावान् होता है, वह इस स्तर को प्राप्त होता है ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। आप भी भक्त बन सकते हैं जैसे वे बने हैं। यह कठिन नहीं है। स्वयं को केवल भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा में लगाना होगा, बस इतना ही।

**बाँब :** भक्ति से रहित सेवा की क्या स्थिति है ?

**श्रील प्रभुपाद :** हूँ ? वह सेवा नहीं है, वह व्यापार है। (सब लोग हँसते हैं।) उदाहरणार्थ, यहाँ मायापुर में हमने एक ठेकेदार को काम में लगाया है। वह सेवा नहीं है, वह व्यापार है। है कि नहीं ? कभी-कभी वे विज्ञापन देते हैं, “हमारे ग्राहक हमारे स्वामी हैं।” है कि नहीं ? किन्तु अलंकृत भाषा “हमारे ग्राहक हमारे स्वामी हैं” के होने पर भी यह व्यापार है, क्योंकि जब तक वह पैसा न दे, कोई भी वास्तविक ग्राहक नहीं होता है। किन्तु सेवा वैसी नहीं है। चैतन्य महाप्रभु कृष्ण से प्रार्थना करते हैं—*यथा तथा वा विदधातु लम्पटो मत्प्राणनाथस्तु स व एव नापरः*—“आपकी जो इच्छा हो करें, किन्तु फिर भी आप मेरे आराध्य देव हैं।” यह सेवा है। “मैं आपसे कोई प्रतिदान नहीं माँगता हूँ।” यह सेवा है। जब आप किसी प्रतिदान की आशा करते हैं, तब वह व्यापार हो जाता है।

**बाँब :** भगवान् के विषय में अधिक ज्ञान तथा भगवान् की उपस्थिति को अनुभव करने में और अधिक समर्थ होने की मेरी इच्छा है। इसका कारण यह है कि मुझे प्रतीत होता है कि इसके बिना जीवन का कोई अर्थ नहीं है।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। यदि आप इस मानव योनि को खो देंगे, तो यह एक महान् हानि है। भौतिक अस्तित्व के बन्धन से निकलने के लिए जीव को प्रदान किया गया यह एक महान् अवसर है।

**बाँब :** मैं अनुग्रहीत हूँ कि मैं ये प्रश्न कर सका...

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, आप और अधिक सीख सकते हैं। श्री सूत गोस्वामी कहते हैं—

मुनयः साधुपृष्टोऽहं भवद्विलोकमंगलम् ।

यत्कृतः कृष्णसम्प्रश्नो येनात्मा सुप्रसीदति ॥

[“हे साधुगण! आपने मुझसे उचित प्रश्न किया है। आपके प्रश्न योग्य हैं, क्योंकि उनका सम्बन्ध भगवान् कृष्ण से है, अतएव वे जगत् के कल्याण से सम्बन्धित हैं। केवल इसी प्रकार के प्रश्न आत्मा को पूर्णरूपेण सन्तुष्ट करने में समर्थ हैं।”] कृष्ण-सम्प्रश्नः, कृष्ण के सम्बन्ध में प्रश्न करना अत्युत्तम है। जब आप कृष्ण के विषय में विचार-विमर्श तथा श्रवण करते हैं वह लोक-मंगलम् है, सबके लिए मांगलिक। प्रश्न तथा उत्तर दोनों ही।

**बाँब :** किन्तु अभी मेरे...घर पर मेरे सम्बन्ध हैं। विवाह...मेरी सगाई हो चुकी है।

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं, नहीं। इतने सारे विवाहित हैं। (वे श्यामसुन्दर की ओर संकेत करते हैं) वह विवाहित है। विवाह कोई बाधा नहीं है। मैंने आपको बताया था कि आध्यात्मिक जीवन के चार भिन्न-भिन्न आश्रम हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। अतः ब्रह्मचर्य जीवन के उपरान्त व्यक्ति विवाह कर सकता है परन्तु ऐसा करना आवश्यक नहीं है। मनुष्य जीवन पर्यन्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी भी रह सकता है। किन्तु एक ब्रह्मचारी विवाह कर सकता है। विवाह के उपरान्त वानप्रस्थ जीवन है। इसका अर्थ है कि मनुष्य परिवार से किञ्चित् पृथक् रहता है—पति तथा पत्नी अलग-अलग रहते हैं। उस काल में संभोग नहीं किया जाता है। तत्पश्चात् जब मनुष्य परिवार से पूर्णरूपेण विलग हो जाता है, त्यागी हो जाता है, तब वह संन्यास ग्रहण करता है।

**बाँब :** क्या तब संन्यासी अपनी पत्नी को पूर्णरूपेण विस्मृत कर देता है ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। यदि आप विस्मरण करने का प्रयास करें तो विस्मरण करना इतना कठिन नहीं है। दृष्टि से दूर, मन से दूर। (सब हँसते हैं।) वैसे ही जैसे मेरी पत्नी, सन्तानें, पौत्रादि सब हैं। किन्तु दृष्टि से दूर, मन से दूर; इतना ही है। अतएव, वैदिक प्रणाली द्वारा वानप्रस्थ, संन्यास, प्रत्येक वस्तु की उत्तम योजना की गई है।

पाँच

## निर्मल होना

फरवरी २८, १९७२

**बाँब :** आपने मुझे प्रश्न करने की अनुमति दी, इसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

**श्रील प्रभुपाद :** यही मेरा ध्येय है। लोग भगवद्-विज्ञान को समझें। जब तक हम परमेश्वर से सहयोग न करें, हमारा जीवन भ्रमित रहता है। मैंने अनेकों बार यह उदाहरण दिया है कि किसी यन्त्र से निकल कर गिरे हुए पेंच (स्कू) का कोई महत्व नहीं होता है। किन्तु जब उस पेंच (स्कू) को पुनः यन्त्र में लगा दिया जाता है तब वह महत्वपूर्ण हो जाता है। इसी प्रकार हम सब भगवान् के अंश हैं। फिर भगवान् के बिना हमारा मूल्य क्या है? कोई मूल्य नहीं है! हमें पुनः भगवान् से अनुरक्त होने की अपनी स्थिति को पुनः प्राप्त करना चाहिए। तब हमारा मूल्य है।

**बाँब :** आज अपराह्न में यहाँ आये एक युवक से मेरी भेंट हुई। यहाँ आने का उसका कारण था कि उसने सुना था कि मायापुर में हिप्पी हैं।

**श्रील प्रभुपाद :** क्या? वह भारतीय है?

**बाँब :** हाँ। वह भारतीय है। वह समीप ही रहता है तथा काफी अच्छी अंग्रेजी बोलता है। जब वह युवक था, वह काली (एक

लोकप्रिय देवी) की प्रतिदिन निष्ठापूर्वक उपासना करता था, तत्पश्चात् बाढ़ आई। जब बाढ़ आई तो लोगों को कष्ट हुआ, तथा अब उसका कोई धर्म नहीं है; वह कहता है कि लोगों के मध्य प्रेमभावना विकसित करने के प्रयास में वह अपना सुख प्राप्त करता है। मैं यह नहीं समझ सका कि उससे क्या कहूँ जिससे कि वह उसके जीवन में भगवान् तथा धर्म का समावेश करे। वह कहता है कि मृत्यु के उपरान्त, “हो सकता है मैं भगवान् का अंश बन जाऊँ, हो सकता है न बनूँ” किन्तु वह अभी इस विषय में चिन्ता नहीं कर सकता है। वह कहता है कि उसने इन धार्मिक अनुभवों को भी परखा है, किन्तु वे काम न कर सके। मेरे यह प्रश्न करने का एक कारण यह है कि जब मैं अमरीका वापस जाऊँगा, तब जिनके सम्पर्क में मैं आऊँगा, उनमें से अधिकतर लोग ऐसे ही हैं। वे देखते हैं कि उस व्यक्ति की काली देवी की पूजा की भाँति अथवा उनके द्वारा अनुभूत अन्य धर्मों की भाँति, वे धर्म कार्य नहीं करते हैं। उन्हें यह विश्वास दिलवाने के लिए कि यह परखने योग्य है, मैं उनसे क्या कहूँ, यह मुझे ज्ञात नहीं।

**श्रील प्रभुपाद :** आप इसका प्रयास अभी न करें। अभी आप स्वयं विश्वस्त होने का प्रयास करें। तत्पश्चात् अन्य लोगों को समझाने का प्रयास कीजिए। श्रीचैतन्य महाप्रभु का आदेश है कि जब आपका अपना जीवन सफल होता है, तभी आप दूसरों के कल्याण में वृद्धि कर सकते हैं—

*भारत-भूमिते हङ्गल मनुष्य-जन्म या*

*जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार*

प्रथम अपने जीवन को पूर्ण बनाइए। तत्पश्चात् दूसरों को शिक्षा देने का प्रयत्न कीजिए।

**बाँब :** भक्तों ने मुझे बताया है कि प्रत्येक क्षण कृष्णभावनाभावित हुए बिना आप सुखी नहीं हो सकते हैं। परन्तु मुझे कभी-कभी सुख का अनुभव होता है।

**श्रील प्रभुपाद :** कभी-कभी। सदैव नहीं।

**बाँब :** हाँ।

**श्रील प्रभुपाद :** किन्तु यदि आप कृष्णभावनामय बन जाएँ, तब आपको सदैव सुख का अनुभव होगा।

**बाँब :** उन्होंने यह संकेत दिया था कि कृष्णभावनामृत के बिना आप सुख का अनुभव नहीं कर सकते हैं।

**श्रील प्रभुपाद :** यह एक तथ्य है। उदाहरण के लिए, यदि आप थलचर पशु हैं तथा आपको जल में फेंक दिया जाए, आप किसी भी स्थिति में जल में सुखी नहीं हो सकते हैं। जब आपको पुनः धरती पर लाया जाये, तब आप सुखी होंगे। उसी प्रकार हम कृष्ण के अंश हैं। कृष्ण के अंश हुए बिना हम सुखी नहीं हो सकते। वही उदाहरण—यंत्र का पुर्जा यंत्र के बिना बेकार है, किन्तु जब इसे पुनः यन्त्र में लगा दिया जाता है तब वह महत्त्वपूर्ण हो जाता है। हम कृष्ण के अंश हैं, हमें कृष्ण में मिल जाना चाहिए। तथा आप अपनी भावना से तत्काल ही, केवल यह विचार करने के द्वारा ही कि, “मैं कृष्ण का हूँ, कृष्ण मेरे हैं,” कृष्ण के संग हो सकते हैं। बस इतना ही।

**बाँब :** हम कृष्ण के अंश हैं।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। प्रत्येक वस्तु कृष्ण का अंश है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु कृष्ण की शक्ति से उत्पन्न होती है तथा प्रत्येक वस्तु कृष्ण की शक्ति है।

**बाँब :** मैं किस प्रकार स्वयं को भगवान् के अधिक निकट अनुभव कर सकता हूँ? मैं कभी-कभी मन्दिर आता हूँ, तत्पश्चात् चला जाता हूँ तथा मुझे निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि मैं कितना ग्रहण करके अपने साथ ले जाता हूँ।

**श्रील प्रभुपाद :** तुम्हें निर्मल होना पड़ेगा। इसमें अधिक समय नहीं लगता है। छः माह के अन्दर आपको अपनी प्रगति का बोध होगा। किन्तु आपको विधिविधानों का पालन करना होगा; तब सब ठीक हो जायेगा। जैसे ये युवक व युवतीयाँ कर रहे हैं।

**बाँब :** हाँ, समझा।

**श्रील प्रभुपाद :** उनमें सिनेमा अथवा होटल जाने की कोई प्रवृत्ति नहीं है। नहीं। उन्होंने समस्त अनर्थों, अनावश्यक वस्तुओं को त्याग दिया है। *तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्धयेद् यस्माद् बहसौख्यं त्वनन्तम्।* भगवान् ऋषभदेव यहाँ कहते हैं कि हमें तपस्या तथा आत्मनिग्रह करना चाहिए ताकि हम अपने अस्तित्व को निर्मल बना सकें और सनातन दिव्य सुख के स्तर को प्राप्त कर सकें। सत्त्व का अर्थ है अस्तित्व। यदि आप अपने अस्तित्व को निर्मल नहीं करते हैं, तो आपको अपनी देह परिवर्तित करनी होगी। इस देह से उस देह में। वह कभी-कभी उच्च कोटि की हो सकती है तथा कभी-कभी निम्न कोटि की। उदाहरण के लिए, यदि आप किसी रोग का उपचार न करें, तो वह कई प्रकार से आपको कष्ट दे सकता है। इसी प्रकार यदि आप अपने अस्तित्व को निर्मल न करें, तो आपको इस देह से दूसरी में देहान्तरण करना पड़ेगा। प्रकृति के नियम अत्यन्त गूढ़ हैं। यह निश्चित नहीं है कि आपको कोई अत्यन्त सुखपूर्ण अमरीकी शरीर प्राप्त होगा। अतएव मानव के लिए आवश्यक है कि वह अपने अस्तित्व को निर्मल करे। जब तक आप

अपने अस्तित्व को निर्मल नहीं करेंगे, तब तक आपमें सुख प्राप्त करने की लालसा बनी रहेगी, किन्तु आप सदैव सुखी नहीं होंगे।

**बाँब :** मुझे आशा है कि जब मैं न्यूयॉर्क में अपने कार्य पर वापस लौटूँगा, तब मैं निर्मल हो जाऊँगा, किन्तु मुझे विश्वास है कि मैं उतना निर्मल नहीं हो पाऊँगा जितना कि यहाँ उपस्थित आपके भक्त। मैं...मैं वैसा न कर सकूँगा।

**श्रील प्रभुपाद :** जिस प्रकार वे कर रहे हैं, वैसे ही आप भी कर सकते हैं। प्रारम्भ में वे निर्मल नहीं थे, किन्तु अब वे निर्मल हैं। इसी भाँति आप निर्मल हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, अपनी बाल्यावस्था में आप शिक्षित नहीं थे, किन्तु अब आप शिक्षित हैं। यदि आप इस विषय में गम्भीर हैं, तब आप स्वयं को कहीं भी निर्मल रख सकते हैं। आप अमरीका में रहें अथवा भारत में, उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता है। किन्तु आपको यह अवश्य ज्ञात होना चाहिए कि स्वयं को निर्मल किस प्रकार रखा जाए। बस इतना ही।

**बाँब :** आपका तात्पर्य है कि इन सिद्धान्तों का पालन करके?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। उदाहरण के लिए, मैं अमरीका गया था, किन्तु अमरीका में अथवा भारत में, मैं वही व्यक्ति हूँ।

**बाँब :** आपसे प्रथम बार नवम्बर में भेंट होने के बाद से मैंने कुछ-कुछ पालन करने का प्रयास किया है।

**श्रील प्रभुपाद :** हूँ। यदि आप गम्भीर हैं तो आपको कठोरता से पालन करना चाहिए।

**बाँब :** हो सकता है—ठीक है। हो सकता है, जो मैं अब कहूँ वह मेरी बातों में सर्वाधिक मूर्खतापूर्ण बात हो। किन्तु मैं आपको बताता हूँ कि मुझे कैसा अनुभव होता है।

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं, नहीं, मूर्खतापूर्ण नहीं। मैं उसे मूर्खतापूर्ण नहीं अपितु अपूर्ण कहता हूँ।

**बाँब :** (हँसता है) अपूर्ण। किन्तु मैं आपको बताता हूँ। मुझे अनुभव होता है कि अभी तो मैं आपके भक्तों की सराहना करता हूँ तथा उनका आदर करता हूँ, किन्तु मुझे ऐसा नहीं लगता है कि मैं उनका अंग हूँ, अथवा यह कि मुझे उनमें सम्मिलित होने की कोई विशेष इच्छा है। मुझे प्रतीत होता है कि मुझे...मुझे केवल उचित कार्य करने की तथा ईश्वर के समीप आने की इच्छा है—तथा यदि मैं अगले जन्म में श्रेष्ठ योनि को प्राप्त कर सकूँ—तो मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगा।

**श्रील प्रभुपाद :** अत्युत्तम।

**बाँब :** मेरा अनुमान यह है कि यह भौतिकता के प्रति मोह है, किन्तु...

**श्रील प्रभुपाद :** अतः आप केवल उनके चरणचिह्नों पर चलिए, आपकी इच्छा पूर्ण हो जाएगी। हम उन्हें निर्मल तथा सुखी होने का प्रशिक्षण दे रहे हैं। यही हमारा ध्येय है। हम सबको सुखी देखना चाहते हैं। *सर्वे सुखिनो भवन्तु*। लोगों को यह ज्ञात नहीं है कि सुखी किस प्रकार हुआ जाए। वे सुखी होने के लिए प्रामाणिक पथ का अनुसरण नहीं करते हैं। वे अपने मार्ग का स्वयं निर्माण करते हैं। यही कठिनाई है। अतएव ऋषभदेव ने अपने पुत्रों को यह परामर्श दिया, “प्रिय पुत्रों! दिव्य साक्षात्कार के लिए केवल तप करो।” हर कोई तपस्या कर रहा है। मैं एक लड़के को जानता हूँ—व्यावसायिक प्रबन्ध की शिक्षा प्राप्त करने के लिए उसे विदेश जाना पड़ा था। अब वह अच्छे पद पर है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को भावी-जीवन के लिए कुछ न कुछ तप करना पड़ता है। फिर क्यों न उस तप को स्थायी सुख के लिए स्वीकार करें?

आपको अपने अस्तित्व तथा देह को निर्मल करना होगा। जितनी बार आप एक भौतिक देह को स्वीकार करेंगे, उतनी ही बार आपको उसे बदलना होगा। किन्तु जैसे ही आपको आध्यात्मिक देह की प्राप्ति होती है, परिवर्तन का कोई प्रश्न नहीं उठता। आप के पास पहले से ही आध्यात्मिक देह है। अब अपने भौतिक दूषणों के कारण हम भौतिक देह विकसित कर रहे हैं। किन्तु यदि हम आध्यात्मिक जीवन से जुड़ जाएँ, तब हम एक आध्यात्मिक देह को विकसित करेंगे। यदि हम एक लौह शलाका को अग्नि में डालेंगे, तो वह अग्नि के समान हो जाएगी। क्या ऐसा नहीं है?

**बाँब :** हाँ।

**श्रील प्रभुपाद :** जब एक लौह शलाका अत्यन्त तप्त हो तब आप उसे कहीं भी स्पर्श करें, वह जलाएगी। यह अग्नि का गुण प्राप्त कर लेती है। इसी भाँति यदि आप सदैव स्वयं को कृष्णभावनामृत में निमग्न रखें, तब भौतिक होने पर भी आपका देह अध्यात्ममय हो जाएगा। फिर आपकी कोई भौतिक माँग नहीं होगी।

**बाँब :** मैं ऐसा किस प्रकार कर सकता हूँ?

**श्रील प्रभुपाद :** यह प्रक्रिया। आपने इन युवकों को देखा है, हमारे छः युवक जिन्हें आज दीक्षा दी गई है। वे ऐसा कर रहे हैं। यह अत्यन्त सरल है। आपको केवल चार निषेधात्मक विधि-विधानों का पालन तथा इस माला पर हरे कृष्ण का जप करना होता है। अत्यन्त सरल।

**बाँब :** यदि मैं इन नियमों में से कुछ का पालन करता हूँ, सभी का नहीं...

**श्रील प्रभुपाद :** “कुछ” का अर्थ है...? केवल चार विधि-विधान हैं। कुछ का अर्थ है तीन, अथवा दो?

**बाँब :** दो या तीन।

**श्रील प्रभुपाद :** फिर अन्य एक क्यों नहीं?

**बाँब :** नहीं, नहीं। मेरा तात्पर्य है कि मैं एक या दो का पालन करता हूँ। अभी मैं एक या दो का पालन करता हूँ।

**श्रील प्रभुपाद :** (हँसते हैं) अन्य तीन क्यों नहीं? क्या कठिनाई है? आप कौन से नियम का पालन करते हैं?

**बाँब :** मैं कौन से नियम का पालन करता हूँ? मैं लगभग शाकाहारी हूँ किन्तु मैं अंडा खाता हूँ।

**श्रील प्रभुपाद :** तब वह भी पूर्ण नहीं है।

**बाँब :** नहीं, पूर्ण नहीं है। गत भेंट के समय से (नवम्बर) मैं शाकाहारी हो गया हूँ, किन्तु...

**श्रील प्रभुपाद :** शाकाहारी होना कोई योग्यता नहीं है। कबूतर शाकाहारी है, वानर शाकाहारी है—सर्वाधिक व्यर्थ जीव, सबसे बदमाश।

**बाँब :** मुझे प्रतीत हुआ कि यह किंचित प्रगति थी, क्योंकि प्रारम्भ में यह थोड़ा कठिन था, तत्पश्चात् सरल।

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं, यदि आप कृष्णभावनामृत की प्रक्रिया को अंगीकार करें तब आप समस्त विधि-विधानों का पालन कर सकते हैं—अन्यथा यह सम्भव नहीं है।

**बाँब :** हाँ। यही बात है। जब मैं बिहार वापस लौटूँगा तब—मेरे मित्र कह सकते हैं...हम सन्ध्या काल में बैठे हैं, तथा मच्छरों से युद्ध करने के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं है, तथा वे कहते हैं, “थोड़ी चरस पीने के विषय में तुम्हारा क्या विचार है?” तथा मैं कहता हूँ “ठीक है, और कोई कार्य तो है नहीं,” तत्पश्चात् मैं बैठ

जाता हूँ, तथा उस सन्ध्या का मैं आनन्द भोगता हूँ। हमने ऐसा किया, हम उस प्रवाह में बह गये, हम प्रतिदिन ऐसा कर रहे थे, और यह ज्ञान होने पर कि हम स्वयं को कष्ट दे रहे हैं, हमने यह क्रम रोक दिया, किन्तु फिर भी कभी-कभी हम...

**श्रील प्रभुपाद :** आपको हमारे साथ रहना होगा। तब आपके मित्र आपसे यह प्रश्न नहीं करेंगे, “चरस पीने के विषय में क्या विचार है?” (बाँब हँसता है) भक्तों की संगति करो। लोगों को अपनी संगति का अवसर प्रदान करने के लिए हम केन्द्र खोल रहे हैं। हमने मायापुर में इतनी भूमि क्यों ली है? जो वास्तव में इच्छुक हैं—वे आकर हमारे साथ रहेंगे। संगति अत्यन्त प्रभावशाली होती है। यदि आप शराबियों की संगति करें तब आप शराबी बन जाते हैं; यदि आप साधुओं की संगति करें तब आप साधु बन जाते हैं।  
**श्यामसुन्दर (श्रील प्रभुपाद के सचिव) :** ये मुंबई में आकर आपके साथ रह सकते हैं।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, आप हमारे साथ मुंबई में रह सकते हैं। किन्तु इन्हें चरस वाले मित्र चाहिए। यही कठिनाई है।

**बाँब :** पहले मैं आपसे किसी अन्य विषय में प्रश्न करना चाहूँगा। तत्पश्चात् हो सकता है मैं पुनः इस विषय पर लौटूँ। मैं देखता हूँ कि मैं अपने विषय में बहुत सोचता हूँ, और इस प्रकार मैं ईश्वर के विषय में इतना अधिक विचार नहीं कर सकता हूँ। मैं अनेकानेक स्थानों में अपने बारे में विचार करता हूँ। किस प्रकार मैं स्वयं के बारे में विस्मरण कर सकूँ जिससे कि मैं अन्य अधिक महत्त्वपूर्ण बातों पर ध्यान एकाग्र कर सकूँ?

**श्रील प्रभुपाद :** जैसे इन भक्तों ने किया है।

**बाँब :** (हँसता है) आप मुझे कह रहे हैं कि मेरा मार्ग... मेरे विचार में आप कह रहे हैं कि निर्मलता की ओर मेरा मार्ग एक भक्त बनने में है।

**श्रील प्रभुपाद :** आपको क्या असमंजस है?

**बाँब :** बात यह है कि मैं...

**श्रील प्रभुपाद :** क्या भक्त बनना अत्यन्त कठिन है?

**बाँब :** मेरे लिए यह कठिन है। मुझे इतनी तीव्र इच्छा का अनुभव नहीं होता है। प्रथम, भक्त मुझे बताते हैं कि उन्होंने भौतिक जीवन का परित्याग कर दिया है। उन्होंने मुझे स्पष्ट रूप से बताया है कि इन चारों विधि-विधानों का अर्थ भौतिक जीवन का परित्याग है, तथा मैं भी वैसा ही समझता हूँ। तथा इसके स्थान पर उनके पास...

**श्रील प्रभुपाद :** भौतिक जीवन से आपका तात्पर्य क्या है? (बाँब चुप है) मैं इस शय्या पर बैठा हूँ। यह भौतिक है अथवा आध्यात्मिक?

**बाँब :** भौतिक।

**श्रील प्रभुपाद :** तब हमने भौतिक जीवन का परित्याग किस प्रकार किया है?

**बाँब :** मेरे विचार में मैंने इसका जो अर्थ लगाया था वह “अपनी भौतिक उपलब्धियों की इच्छा...”

**श्रील प्रभुपाद :** भौतिक क्या है?

**बाँब :** भौतिक उपलब्धियों के लिए कार्य करना तथा समस्त भौतिक वस्तुओं का परित्याग न करना।

**श्रील प्रभुपाद :** जब आप अपनी इन्द्रिय की तृप्ति की कामना करते हैं, वह भौतिक जीवन है। जब आप भगवान् की सेवा करने की इच्छा करते हैं, वह आध्यात्मिक जीवन है। भौतिक जीवन तथा



आध्यात्मिक जीवन में यही अन्तर है। अब हम अपनी इन्द्रियों की सेवा करने का प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु इन्द्रियों की सेवा करने के स्थान पर हमें भगवान् की सेवा करनी चाहिए, वह आध्यात्मिक जीवन है। हमारी गतिविधियों तथा अन्य लोगों की गतिविधियों में क्या अंतर है? हम मेज, कुर्सी, शय्या, टेप रिकॉर्डर, टाईपराईटर—प्रत्येक वस्तु का प्रयोग कर रहे हैं, फिर अन्तर क्या है? अन्तर यह है कि हम प्रत्येक वस्तु का उपयोग कृष्ण के लिए कर रहे हैं।

**बाँब :** भक्तों ने कहा है कि उन्होंने जिन इन्द्रिय-सुखों का त्याग किया है उनका स्थान आध्यात्मिक प्रकार के सुखों ने ले लिया है, किन्तु मुझे इसका अनुभव नहीं हुआ है।

**श्रील प्रभुपाद :** आध्यात्मिक सुख तब आते हैं जब आप कृष्ण को प्रसन्न करने की इच्छा करते हैं। वह आध्यात्मिक सुख है। उदाहरण के लिए, एक माता अपने पुत्र को भोजन करवाकर अधिक प्रसन्न होती है। वह स्वयं भोजन नहीं कर रही है किन्तु जब वह देखती है कि उसका पुत्र भली-भाँति भोजन कर रहा है, तब वह प्रसन्न हो जाती है।

**बाँब :** हूँ। तब भगवान् को प्रसन्न करना ही आध्यात्मिक सुख है।

**श्रील प्रभुपाद :** आध्यात्मिक सुख का अर्थ है, कृष्ण का सुख।

**बाँब :** कृष्ण को प्रसन्न करना।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। भौतिक सुख का अर्थ है, इन्द्रियों का सुख। बस इतना ही। यही अन्तर है। जब आप केवल कृष्ण को प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं, वह आध्यात्मिक सुख है।

**बाँब :** मैंने इसे ऐसे समझा था—भगवान् को प्रसन्न करने का मेरा विचार यह था कि...

**श्रील प्रभुपाद :** भगवान् को प्रसन्न करने की अपनी विधियों की रचना न करें। मान लीजिए कि मैं आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। तब मैं आपसे प्रश्न करूँगा, “मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?” मैं स्वयं किसी सेवा का निर्माण नहीं करूँगा। वह प्रसन्न करना नहीं है। मान लीजिए मुझे एक गिलास जल चाहिए। यदि आप यह विचार उत्पन्न कर लें, “स्वामी जी को एक गिलास गर्म दूध देने से अधिक प्रसन्न होंगे,” तो उससे मुझे प्रसन्नता नहीं होगी। यदि आप मुझे प्रसन्न करना चाहते हैं तब आपको मुझसे प्रश्न करना चाहिए, “मैं आपको कैसे प्रसन्न कर सकता हूँ? तथा यदि आप मेरे आदेश के अनुसार कार्य करें, तब मुझे प्रसन्नता होगी।

**बाँब :** और कृष्ण को प्रसन्न करना ही कृष्ण का भक्त बनना है।

**श्रील प्रभुपाद :** भक्त वह है जो सदैव कृष्ण को प्रसन्न करता रहता है। उसे अन्य कोई कार्य नहीं है। वही भक्त है।

**बाँब :** क्या आप मुझे हरे कृष्ण मंत्र के जप से सम्बन्धित कुछ और जानकारी देंगे? मैंने काफी समय से मंत्र का जप किया है, किन्तु नियमित रूप से नहीं—थोड़ा बहुत इधर-उधर किया है। मैंने माला भी अभी कुछ समय पूर्व ही प्राप्त की है एवं कभी-कभी मैं जप करते हुए सुख का अनुभव करता हूँ तथा कभी-कभी मुझे किंचित् असुविधा प्रतीत होती है। हो सकता है कि मैं गलत ढंग से जप करता होऊँ। मुझे ज्ञात नहीं है।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। प्रत्येक वस्तु की एक प्रक्रिया होती है तथा आपको उस प्रक्रिया को अपनाना होता है।

**बाँब :** जप करते हुए भक्तों को जो आनन्द अनुभव होता है, उसके विषय में वे मुझे बताते हैं।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, आप जितना अधिक निर्मल होंगे, आपको उतना ही अधिक आनन्द का अनुभव होगा। यह जप की प्रक्रिया निर्मल करने वाली प्रक्रिया है।

छः

## आदर्श भक्त

फरवरी २९, १९७२ (सायंकाल)

**श्यामसुन्दर :** श्रील प्रभुपाद, आज मध्याह्न में हम कृष्णभावनामृत में तपस्या का पालन करने के विषय पर चर्चा कर रहे थे। क्या आप उस पर अधिक जानकारी प्रदान कर सकते हैं ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, आध्यात्मिक गुरु के निर्देश के अन्तर्गत व्यक्ति को संयम का पालन करने का प्रयास करना चाहिए। हो सकता है कि आपको ऐसा करने की इच्छा नहीं है। किन्तु जब आप एक आध्यात्मिक गुरु स्वीकार करते हैं, तब आपको उनकी आज्ञा का पालन करना पड़ता है। यह संयम है।

**श्यामसुन्दर :** यदि आप आत्म-संयम का अभ्यास न करना चाहें, तब भी अवश्य करना चाहिए।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, आपको अवश्य करना चाहिए क्योंकि आप अपने आध्यात्मिक गुरु की शरण में आये हैं, अतएव उनका आदेश अन्तिम है। अतः आपको वह रुचिकर न हो तब भी आपको उसका पालन करना है; मुझे प्रसन्न करने के लिए।

**श्यामसुन्दर :** अच्छा।

**श्रील प्रभुपाद :** किन्तु आपको रुचिकर नहीं है...[हँसते हैं] उपवास करना किसी को भी रुचिकर नहीं होता है, किन्तु

आध्यात्मिक गुरु कहते हैं, “आज उपवास है,” फिर क्या किया जा सकता है? [श्यामसुन्दर हँसते हैं] शिष्य वह होता है जिसने स्वेच्छापूर्वक आध्यात्मिक गुरु के द्वारा अनुशासित होना स्वीकार किया है। यह संयम है।

**श्यामसुन्दर :** भौतिक जगत् में अनेक लोग—जो भौतिक जीवन से पूर्णतः विभ्रमित हैं—वे किसी प्रकार के संयम अथवा शारीरिक कष्ट को स्वीकार नहीं करना चाहते हैं, परन्तु फिर भी उन्हें स्वीकार करना पड़ता है। प्रकृति उन्हें संयम करने के लिए बाध्य करती है।

**श्रील प्रभुपाद :** वह बलात् संयम है। वह श्रेष्ठ नहीं है। स्वेच्छा से किया गया संयम सहायक होगा।

**श्यामसुन्दर :** यदि आप स्वेच्छापूर्वक संयम न करें, तब आपको संयम करने के लिए बाध्य किया जाएगा।

**श्रील प्रभुपाद :** मानव तथा पशु में यही भेद है। पशु संयम को स्वीकार नहीं कर सकता है। किन्तु एक मानव इसे स्वीकार कर सकता है। हलवाई की दुकान में एक उत्तम खाद्य पदार्थ है। मनुष्य उसे खाने की इच्छा करता है। किन्तु वह देखता है कि उसके पास पैसे नहीं हैं। अतः वह आत्म-संयम कर सकता है। किन्तु जब एक गाय आती है। वह तत्काल अपना मुँह उसमें डाल देती है। आप उसे एक छड़ी से मार सकते हैं, किन्तु वह इसे सहन कर लेगी। अतएव एक पशु संयम नहीं कर सकता है।

किन्तु हमारा संयम अत्यन्त उत्तम है। हम हरे कृष्ण का जप करते हैं, नृत्य करते हैं तथा कृष्ण अत्यन्त उत्तम खाद्य पदार्थ भेज देते हैं तथा हम उसे खाते हैं। केवल इतना ही। आप लोग ऐसे संयम के लिए तत्पर क्यों नहीं हैं? जप करना नृत्य करना तथा उत्तम भोजन करना? हम संयम का पालन कर रहे हैं अतएव कृष्ण

हमारे लिए उत्तम पदार्थ भेजते हैं। अतः हम घाटे में नहीं रहते। जब आप कृष्णमय बन जाते हैं, तब आप वर्तमान सुविधाओं से अधिक सुविधाएँ प्राप्त करते हैं। यह एक तथ्य है। मैं गत बीस वर्षों से एकाकी रह रहा हूँ किन्तु मुझे कोई कठिनाई नहीं है। संन्यास ग्रहण करने के पूर्व मैं दिल्ली में निवास करता था। यद्यपि मैं एकाकी रह रहा था तथापि मुझे कोई कठिनाई नहीं थी।

**श्यामसुन्दर :** यदि आप आध्यात्मिक अनुशासन स्वीकार नहीं करते तब प्रकृति अनेकों विपत्तियाँ थोप देगी।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। भगवद्गीता में ऐसा कहा गया है।

*दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।*

*मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥*

[“मेरी इस दैवी शक्ति को, जो भौतिक प्रकृति के तीन गुणों से बनी है, पार कर पाना अत्यन्त दुष्कर है। परन्तु जो मेरे शरणागत हो जाते हैं, वे सुगमतापूर्वक इसे पार कर जाते हैं।”] माया अनेकों कठिनाइयाँ उत्पन्न करती है किन्तु जैसे ही आप कृष्ण की शरण में जाते हैं, फिर कोई कठिनाई नहीं रहती है।

**श्यामसुन्दर :** हम इतने मूर्ख थे कि हम सदैव यही सोचते रहते थे, “मैं भविष्य में सुखी होऊँगा।”

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, वह माया है। यह एक गधे के समान है। आप गधे की पीठ पर सवार हो जाइए तथा अपने हाथ में थोड़ी घास ले लीजिए। गधा सोचता है, “थोड़ा आगे बढ़ूँ, तब मुझे घास प्राप्त हो जाएगी।” [बाँब हँसता है।] किन्तु वह (घास) सदैव एक फुट दूर रहती है। वह गधावाद है। [वे सब हँसते हैं।] सब लोग सोचते हैं, “थोड़ा आगे बढ़ूँ तब मुझे वह प्राप्त हो जाएगा। मैं अत्यन्त सुखी हो जाऊँगा।”

[एक दीर्घ अन्तराल जिसमें सायकिल की घन्टी, बालकों के खेलने, तथा लोगों के एक दूसरे को पुकारने का स्वर सुनाई पड़ता है।]

**बाँब :** मैं...मैं आपको अत्यधिक धन्यावाद देता हूँ कि...

**श्रील प्रभुपाद :** हूँ?

**बाँब :** कल मुझे आपसे दूर जाना होगा और...

**श्रील प्रभुपाद :** जाने की बात मत कहो, अपितु रहने की बात कहो।

**बाँब :** अभी मैं नहीं कह सकता हूँ, किन्तु अब मैं कल अपने नगर वापस जाने का विचार कर रहा था। किन्तु...

**श्रील प्रभुपाद :** वापस मत जाओ।

**बाँब :** मैं कल यहाँ ठहरूँ...यहाँ?

**श्रील प्रभुपाद :** यहाँ ठहरो।

**बाँब :** आप ठहरने के लिए कहते हैं तो मैं ठहरूँगा।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, तुम एक अच्छे बालक हो। [एक लम्बा अन्तराल। अब पहले से अधिक शान्ति है।] यह अत्यन्त सरल है। जब जीव कृष्ण को विस्मृत कर देते हैं, तब तक वे इस भौतिक जगत् में हैं। कृष्ण का अर्थ उनका नाम, उनका रूप, उनका धाम, उनकी लीलाएँ...सभी कुछ है। जब हम एक राजा के विषय में वार्ता करते हैं, इसका अर्थ होता है, राजा की सरकार, राजा का महल, राजा की रानी, राजा के पुत्र, सचिव, सैन्य शक्ति—प्रत्येक वस्तु। ऐसा नहीं है क्या?

**बाँब :** हाँ।

**श्रील प्रभुपाद :** इसी भाँति, कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, जैसे ही हम कृष्ण का विचार करते हैं, उसका अर्थ होता है कृष्ण की

समस्त शक्तियाँ। “राधा-कृष्ण” कहने से वह पूर्ण हो जाता है। राधा, कृष्ण की समस्त शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। तथा कृष्ण परमेश्वर हैं। अतएव जब हम कृष्ण की चर्चा करते हैं, तब उसमें जीव भी सम्मिलित होते हैं, क्योंकि जीव कृष्ण की विभिन्न शक्तियों में से एक है—उनकी उच्चतर शक्ति। अतः जब यह शक्ति, शक्तिमान् की सेवा नहीं करती है, तब वह भौतिक अस्तित्व होता है। सम्पूर्ण जगत् कृष्ण की सेवा नहीं कर रहा है। वे कृष्ण की सेवा एक भिन्न प्रकार से कर रहे हैं, जिस प्रकार आज्ञा का उल्लंघन करने वाले नागरिक परोक्ष रूप से सरकार की सेवा करते हैं, उसी प्रकार वे भी परोक्ष रूप से सेवा कर रहे हैं। राज्य के नियमों का उल्लंघन करने के कारण बन्दी, बन्दीगृह में आते हैं। अतः बन्दीगृह में वे राज्य के नियमों का पालन करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। इसी भाँति यहाँ समस्त जीव ईश्वरविहीन हैं, अपनी इच्छावश अथवा अज्ञानवश। भगवान् के प्रभुत्व को स्वीकार करना उन्हें रुचिकर नहीं होता है। आसुरी। अतः हम उन्हें उनकी मूल स्थिति में वापस लाने का प्रयास कर रहे हैं। यही कृष्णभावनामृत आन्दोलन है।

**बाँब :** आपसे मैं कुछ पूछना चाहूँगा, जिस विषय में मैंने भक्तों से चर्चा की है...औषधि। आज मैं कुछ भक्तों के साथ नदी की ओर गया था। मुझे जुखाम है, अतः मैंने कहा मुझे जल में नहीं जाना चाहिए। कुछ भक्तों का विचार था कि मुझे जाना चाहिए, क्योंकि वह गंगा नदी है, तथा कुछ ने कहा कि जुखाम के कारण मुझे नहीं जाना चाहिए। हम चर्चा कर रहे थे और मुझे समझ में नहीं आया। क्या हम अपने पूर्व दुष्कर्मों के कारण अस्वस्थ होते हैं?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, यह एक तथ्य है। हमें जो कोई भी दुःख सहन करते हैं वह हमारे विगत पाप-कर्मों के कारण ही होता है।

**बाँब :** किन्तु जब कोई कर्मफल से मुक्त हो जाता है...क्या वह फिर भी अस्वस्थ होता है ?

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं। यदि वह अस्वस्थ होता भी है तो वह अत्यन्त अस्थायी रूप से होता है। उदाहरण के रूप में यह पंखा चल रहा है। यदि आप विद्युत शक्ति का संपर्क समाप्त कर दें तब पंखा एक पल के लिए ही चलेगा। वह गति विद्युत प्रवाह के कारण नहीं है। वह बल है—उसे क्या कहते हैं, इस बल को, भौतिकरूप से ?

**श्यामसुन्दर :** संवेग।

**श्रील प्रभुपाद :** संवेग। किन्तु जैसे ही संवेग चला जाता है, वैसे ही गति भी शून्य हो जाती है। उसी भाँति यदि कृष्ण की शरण में आया हुआ भक्त भी भौतिक परिणाम भुगत रहा है, तो वह स्थिति अस्थायी है। अतएव भक्त भौतिक दुःखों को दुःखों के रूप में नहीं लेता है। वह उन्हें कृष्ण की, भगवान् की, दया के रूप में लेता है।

**बाँब :** इस प्रकार का भाव एक पूर्णात्मा के लिए ही संभव है।

**श्रील प्रभुपाद :** पूर्णात्मा वह है जो दिन के चौबीसों घंटे कृष्णभावनामृत में संलग्न रहता है। वह पूर्णता है। वह एक दिव्य स्थिति है। पूर्णता का अर्थ है, अपनी मौलिक जागृत भावना में संलग्न होना। वह पूर्णता है। भगवद्गीता में कहा गया है—स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः। “अपने-अपने स्वाभाविक कर्म में लगा हुआ प्रत्येक मनुष्य संसिद्धि को प्राप्त हो सकता है।” परिपूर्ण पूर्णता। संसिद्धि। सिद्धि का अर्थ पूर्णता है। यह ब्रह्म साक्षात्कार, आध्यात्मिक साक्षात्कार है तथा संसिद्धि का अर्थ है भक्ति, जो ब्रह्म साक्षात्कार के पश्चात् आती है।

**बाँब :** क्या आप अन्तिम शब्द को पुनः कहेंगे ?

**श्रील प्रभुपाद :** संसिद्धि।

**बाँब :** हाँ।

**श्रील प्रभुपाद :** सम् का अर्थ है सम्पूर्ण।

**बाँब :** हाँ।

**श्रील प्रभुपाद :** तथा सिद्धि का अर्थ है पूर्णता। भगवद्गीता में कहा गया है कि जो अपने घर, भगवान् के धाम, लौट जाता है उसने सम्पूर्ण पूर्णता प्राप्त कर ली है। अतः पूर्णता तब आती है, जब व्यक्ति को यह बोध हो जाता है कि वह यह शरीर नहीं, अपितु आत्मा है। इसे ब्रह्मभूत स्तर अर्थात् इसे ब्रह्म साक्षात्कार कहते हैं। यह पूर्णता है। तथा संसिद्धि ब्रह्म साक्षात्कार के उपरान्त आती है, जब व्यक्ति भक्तिमय सेवा में संलग्न होता है। अतएव यदि व्यक्ति पहले से ही भक्ति में संलग्न हो, तब समझना चाहिए कि उसे ब्रह्म-साक्षात्कार हो चुका है। अतएव इसे संसिद्धि कहते हैं।

**बाँब :** मैं आपसे अत्यन्त विनयपूर्वक यह पूछता हूँ कि क्या आपको व्याधियों तथा अस्वस्थता का अनुभव होता है ?

**श्रील प्रभुपाद :** हूँ ?

**बाँब :** क्या यह आपके पूर्व कर्मों का फल है ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ।

**बाँब :** तो इस भौतिक जगत् में कोई भी अपने कर्म से बच नहीं सकता है ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, वह बचता है। भक्त के लिए कर्म नहीं रह जाते हैं, न ही कर्म-फल रहता है।

**बाँब :** किन्तु आप तो सर्वोत्तम भक्त होंगे।

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं, मैं स्वयं को सर्वोत्तम भक्त नहीं मानता हूँ। मैं तो निम्नतम हूँ।

**बाँब :** नहीं।

**श्रील प्रभुपाद :** आप सर्वोत्तम भक्त हैं।

**बाँब :** [हँसता है] अरे, नहीं, नहीं! किन्तु देखिए, आप जो कहते हैं, वह सदैव उचित प्रतीत होता है।

**श्रील प्रभुपाद :** बात यह है कि सर्वोत्तम भक्त भी, जब वह प्रचार करता है तब वह भक्त के द्वितीय स्तर पर पहुँच जाता है।

**बाँब :** सर्वोत्तम भक्त क्या करता होगा ?

**श्रील प्रभुपाद :** सर्वोत्तम भक्त प्रचार नहीं करता है।

**बाँब :** वह क्या करता है ?

**श्रील प्रभुपाद :** वह जानता है कि उपेक्ष की कोई आवश्यकता नहीं है। उसके लिए प्रत्येक व्यक्ति भक्त है। [बाँब जोर से हँसता है।] हाँ, उसे कोई अभक्त नहीं दिखाई देता है—सभी भक्त दिखते हैं। उसे एक उत्तम-अधिकारी कहते हैं। किन्तु जब मैं प्रचार कर रहा हूँ, तब मैं यह किस प्रकार कह सकता हूँ कि मैं सर्वोत्तम भक्त हूँ? ठीक राधारानी के समान—उन्हें कोई भी मनुष्य अभक्त नहीं दिखता है। अतएव हम राधारानी के समीप जाने का प्रयास करते हैं।

**बाँब :** ये कौन हैं ?

**श्रील प्रभुपाद :** राधारानी, कृष्ण की प्रेमिका।

**बाँब :** आह !

**श्रील प्रभुपाद :** यदि कोई राधारानी के समीप जाता है, तब वे कृष्ण से उसकी संस्तुति करती हैं, “यह सर्वोत्तम भक्त है। यह मुझसे भी श्रेष्ठतर है।” तथा कृष्ण उसे अस्वीकार नहीं कर सकते।

वही श्रेष्ठतम भक्त है। किन्तु इसका अनुकरण करके यह नहीं कहना चाहिए कि, “मैं श्रेष्ठतम भक्त हो गया हूँ।”

*ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विवत्सु च।*

एक द्वितीय श्रेणी के भक्त को प्रतीत होता है कि कुछ लोग भगवान् के प्रति ईर्ष्या रखते हैं किन्तु उत्तम भक्त की दृष्टि में ऐसा नहीं है। उत्तम भक्त देखता है, “किसी को भी भगवान् के प्रति ईर्ष्या नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति मुझसे श्रेष्ठतर है।” श्रीचैतन्य-चरितामृत के लेखक कृष्णदास कविराज की भाँति वह कहता है, “मैं मल के कीड़े से भी निम्नतर कोटि का हूँ।”

**बाँब :** ऐसा कौन कह रहे हैं ?

**श्रील प्रभुपाद :** कृष्णदास कविराज, श्रीचैतन्य-चरितामृत के लेखक, *पुरीषेर कीट हइते मुनि से लधिष्ट।* वे दिखावा नहीं कर रहे हैं। उन्हें वैसी अनुभूति हो रही है। “मैं निम्नतम हूँ। प्रत्येक व्यक्ति श्रेष्ठतम है, किन्तु मैं निम्नतम हूँ। प्रत्येक व्यक्ति कृष्ण की सेवा में संलग्न है। मैं संलग्न नहीं हूँ।” चैतन्य महाप्रभु ने कहा है, “अरे, मुझमें कृष्ण के प्रति लेशमात्र भी भक्ति नहीं है। मैं दिखावा करने के लिए रोता हूँ। यदि मैं कृष्ण का भक्त होता तो बहुत समय पूर्व ही मेरी मृत्यु हो चुकी होती। किन्तु मैं जीवित हूँ। यही प्रमाण है कि मुझे कृष्ण से प्रेम नहीं है।” श्रेष्ठतम भक्त की यही दृष्टि है। वह कृष्ण के प्रेम में इतना मग्न होता है कि वह कहता है, “अन्य सभी भक्त हैं किन्तु मैं निम्नतम हूँ। अतएव मैं भगवान् के दर्शन नहीं कर सकता हूँ।” वही श्रेष्ठतम भक्त है।

**बाँब :** अतएव भक्त को प्रत्येक प्राणी के उद्धार के लिए कार्य करना चाहिए ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। भक्त को श्रेष्ठतम भक्त का अनुकरण न करके एक प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु के निर्देशन में कार्य करना चाहिए।

**श्यामसुन्दर :** एक बार आपने कहा था कि कभी-कभी आपके भक्तों के पाप-कर्मों के कारण आपको व्याधि अथवा कष्ट का अनुभव होता है। क्या कभी-कभी उस कारण भी रोग हो सकता है ?

**श्रील प्रभुपाद :** देखिए, कृष्ण कहते हैं—*अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः*। “मैं तुम्हारा समस्त पापों से उद्धार कर दूँगा, भयभीत मत हो।” अतः कृष्ण इतने शक्तिमान् हैं कि वे दूसरों के समस्त पापों को लेकर उन्हें तत्क्षण ठीक कर सकते हैं। किन्तु जब एक जीव कृष्ण के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है, तब वह भी अपने भक्तों के पापों का उत्तरदायित्व ले लेता है। अतएव गुरु बनना कोई सरल कार्य नहीं है। आप समझे ? उसे समस्त विष ले कर उसे आत्मसात करना पड़ता है। अतएव कभी-कभी—वह कृष्ण नहीं है इसलिए—कभी-कभी कोई कठिनाई होती है। अतएव श्रीचैतन्य महाप्रभु ने वज्रित किया है, “बहुत अधिक शिष्य मत बनाओ।” किन्तु हमें कष्ट भी हो तब भी प्रचार के लिए हमें अनेकों शिष्य स्वीकार करने पड़ते हैं। यह एक तथ्य है। गुरु को अपने शिष्यों के समस्त पाप-कर्मों का उत्तरदायित्व ग्रहण करना पड़ता है। अतएव जब तक व्यक्ति समस्त पापों को ग्रहण करने में समर्थ न हो, अनेकों शिष्य बनाना एक संकटपूर्ण कार्य है।

*वांछा कल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।*

*पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥*

[“मैं भगवान् के समस्त वैष्णव भक्तों को सादर प्रणाम करता हूँ। वे ठीक कल्पतरु की भाँति हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति की इच्छाओं

की पूर्ति कर सकते हैं तथा वे पतित बद्धात्माओं के प्रति सहानुभूति से परिपूर्ण हैं।”] आध्यात्मिक गुरु समस्त पतितात्माओं का उत्तरदायित्व ग्रहण करते हैं। यह विचार बाइबल में भी मिलता है। ईसामसीह ने लोगों के समस्त पापों के फलों को अंगीकार कर लिया तथा अपने जीवन की आहुति दे दी। एक आध्यात्मिक गुरु का यही उत्तरदायित्व है। चूँकि कृष्ण, कृष्ण हैं अतएव *अपाप-विद्ध* हैं—उन पर पापों के फलों का प्रभाव नहीं होता है। किन्तु जीव इतना क्षुद्र होने के कारण कभी-कभी उनसे प्रभावित हो जाता है। बड़ी अग्नि तथा छोटी अग्नि। यदि आप छोटी अग्नि में कोई बड़ी वस्तु डालें, तो सम्भवतः स्वयं अग्नि ही बुझ जाएगी। किन्तु एक बड़ी अग्नि में आप कुछ भी डाल दें अग्नि को कोई अन्तर नहीं पड़ता है। बड़ी अग्नि कुछ भी भस्म कर सकती है।

**बाँब :** ईसामसीह का कष्ट पाना उस प्रकार का था ?

**श्रील प्रभुपाद :** उन्होंने सब लोगों के पापों के फलों को ग्रहण किया था, अतएव उन्होंने कष्ट उठाया।

**बाँब :** समझा।

**श्रील प्रभुपाद :** बाईबल में यह लिखा है—उन्होंने कहा कि उन्होंने लोगों के समस्त पापों के फलों को ग्रहण करके अपने जीवन की आहुति दी। किन्तु इन ईसाई लोगों ने इसे एक नियम बना लिया कि जब वे सब मूर्खताएँ करें, तब ईसामसीह कष्ट उठाएँ। [बाँब थोड़ा हँसता है।] वे इतने बड़े मूर्ख हैं कि उन्होंने ईसामसीह से इस बात का अनुबन्ध करा लिया है कि वे समस्त पापों के फल ले लेंगे जिससे कि वे स्वयं सभी प्रकार की मूर्खताएँ करते रह सकें। यह उनका धर्म है। ईसामसीह इतने उदार थे कि उन्होंने उनके समस्त पाप-कर्मों के लिए कष्ट उठाया, किन्तु इस तथ्य ने उन्हें इन पाप-

कर्मों को समाप्त करने के लिए प्रेरित नहीं किया। उन्हें इतनी बुद्धि नहीं आयी है। वे इसे बड़ी सरलता से स्वीकार करते हैं। “प्रभु ईसामसीह को कष्ट उठाने दो, तथा हम सब प्रकार की मूर्खताएँ करेंगे।” क्या ऐसा नहीं है ?

**बाँब :** ऐसा ही है।

**श्रील प्रभुपाद :** उन्हें लज्जा आनी चाहिए थी। “प्रभु ईसामसीह ने हमारे लिए कष्ट उठाया, किन्तु हम पाप-कर्म करते ही जा रहे हैं।” उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति को कहा था, “तुम हत्या मत करो।” किन्तु वे यह सोच कर कि, “ईसामसीह हमें क्षमा कर देंगे तथा समस्त पापों के फल ग्रहण कर लेंगे,” हत्या करते जा रहे हैं। यह क्रम चलता जा रहा है।

हमें अत्यन्त सावधान रहना चाहिए—“मेरे पाप-कर्मों के लिए मेरे गुरु को कष्ट होगा, अतएव मैं लेशमात्र भी पाप नहीं करूँगा।” शिष्य का यही कर्तव्य है। दीक्षा के उपरान्त समस्त पापों के फल समाप्त हो जाते हैं। अब यदि वह पुनः पाप-कर्म करता है, तब उसके गुरु को कष्ट भोगना पड़ता है। शिष्य को सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए तथा यह विचार करना चाहिए। “मेरे पाप-कर्मों के लिए मेरे आध्यात्मिक गुरु कष्ट भोगेंगे।” यदि आध्यात्मिक गुरु पर किसी व्याधि का प्रकोप होता है, तब वह अन्य लोगों के पाप-कर्मों के कारण होता है। “अतएव निषेधाज्ञा है कि “अधिक शिष्य मत बनाओ।” किन्तु हम ऐसा करते हैं, क्योंकि हम प्रचार-कार्य कर रहे हैं। कोई बात नहीं—कष्ट होता है तो हो—फिर भी हम उन्हें स्वीकार करेंगे।

अतः आपका प्रश्न था—जब मुझे कष्ट होता है, तब क्या वह मेरे विगत पाप कर्मों के कारण होता है ? यही प्रश्न था न ? यही

मेरी भूल है—कि मैंने कुछ ऐसे शिष्यों को स्वीकार किया जो मूर्ख हैं। यही मेरी भूल है।

**बाँब :** ऐसा कभी-कभी होता है ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। ऐसा होना निश्चित है क्योंकि हम इतने अधिक लोगों को स्वीकार कर रहे हैं। शिष्य का कर्तव्य है कि वह सावधान रहे। “मेरे आध्यात्मिक गुरु ने मेरी रक्षा की है। मुझे पुनः उनको कष्ट में नहीं डालना चाहिए।” जब आध्यात्मिक गुरु कष्ट में होते हैं तब कृष्ण उनकी रक्षा करते हैं। कृष्ण विचार करते हैं, “ओह ! पतित व्यक्तियों का उद्धार करने के लिए उसने इतना अधिक उत्तरदायित्व ग्रहण किया है।” *कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।* “हे अर्जुन, निश्चयपूर्वक घोषणा कर दो कि मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता।” आध्यात्मिक गुरु कृष्ण के लिए संकट उठाते हैं। अतः उनकी सुरक्षा की जाती है।

**बाँब :** आपका कष्ट उसी प्रकार का दुःख नहीं है...

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं, यह कर्म के कारण नहीं है। इसलिए कभी-कभी दुःख होता है, जिससे कि शिष्यों को ज्ञात हो सके कि, “हमारे पाप-कर्मों के कारण हमारे आध्यात्मिक गुरु को कष्ट हो रहा है।”

**बाँब :** आप अभी अत्यन्त स्वस्थ प्रतीत होते हैं।

**श्रील प्रभुपाद :** मैं सदैव स्वस्थ रहता हूँ...अभिप्राय यह है कि जब कष्ट होता भी है, तब मुझे ज्ञात होता है कि कृष्ण मेरी रक्षा करेंगे। किन्तु यह कष्ट मेरे पाप-कर्मों के कारण नहीं है।

**बाँब :** किन्तु हम कहें कि मैं जिस नगर में रहता हूँ, वहाँ उबला हुआ जल पीता हूँ, क्योंकि कहीं कहीं जल में रोगाणु होते हैं। अब यदि मैं इतना अच्छा रहूँ कि मुझे व्याधि न हो तब मैं उबला हुआ



जल क्यों पीऊँ? तब मैं कोई भी जल पी सकता हूँ। तथा यदि मैं अनुचित कार्य कर रहा होऊँगा तब मुझे रोग होगा ही।

**श्रील प्रभुपाद :** जब तक आप इस भौतिक जगत् में रह रहे हैं, आप भौतिक नियमों की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। मान लीजिए कि आप वन में जाएँ और वहाँ एक चीता हो। यह ज्ञात है कि वह आप पर आक्रमण करेगा; फिर भी आप स्वेच्छा से वहाँ जा कर उसका आखेट क्यों बनें? ऐसा नहीं है कि भौतिक शरीर में रहते हुए भक्त को अपने शरीर को संकट में नहीं डालना चाहिए। यह भौतिक नियमों को चुनौती नहीं है—“मैं भक्त बन गया हूँ। मैं प्रत्येक वस्तु को चुनौती देता हूँ।” यह मूर्खता है—

*अनासक्तस्य विषयान् यथार्हम् उपयुञ्जतः।*

*निर्बन्धः कृष्ण-सम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते ॥*

भक्त को परामर्श दिया जाता है कि वह अनासक्त रहकर जीवन की आवश्यकताओं को स्वीकार करे। वह उबला हुआ जल ग्रहण करेगा, किन्तु यदि उबला हुआ जल उपलब्ध न हो तब क्या इसका अर्थ है कि वह जल नहीं पियेगा? यदि यह उपलब्ध नहीं है तब वह साधारण जल पियेगा। हम कृष्ण का प्रसाद ग्रहण करते हैं किन्तु जब हम प्रवास कर रहे होते हैं, कभी-कभी हम होटल में भी भोजन कर लेते हैं। क्योंकि कोई भक्त है अतएव क्या उसे यह विचार करना चाहिए कि, “मैं होटल से कोई खाद्य पदार्थ ग्रहण नहीं करूँगा। मैं भूखा रहूँगा?” यदि मैं भूखा रहूँगा तब मैं निर्बल हो जाऊँगा और मैं प्रचार-कार्य करने में असमर्थ हो जाऊँगा।

**बाँब :** क्या भक्त अपने विशिष्ट व्यक्तित्व को खो देता है?

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं, कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए वह पूरे विशिष्ट व्यक्तित्व का स्वामी है। कृष्ण कहते हैं, “तुम मेरी शरण में

आओ।” अतः वह स्वेच्छापूर्वक शरण में आता है। ऐसा नहीं है कि उसने अपने विशिष्ट व्यक्तित्व को खो दिया है। वह अपन विशिष्ट व्यक्तित्व बनाये रखता है। ठीक अर्जुन की भाँति—अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण वे प्रारम्भ में युद्ध करने से विमुख हो रहे थे। किन्तु जब उन्होंने कृष्ण को आध्यात्मिक गुरु स्वीकार किया, तब वे शिष्य बन गए। तत्पश्चात् कृष्ण ने जो भी आज्ञा दी, उन्होंने उसे स्वीकार किया। इसका अर्थ यह नहीं कि उन्होंने अपना विशिष्ट व्यक्तित्व खो दिया। उन्होंने स्वेच्छापूर्वक स्वीकार किया, “कृष्ण जो कहेंगे, मैं वह करूँगा।” मेरे समस्त शिष्यों के समान—उन्होंने अपने विशिष्ट व्यक्तित्व को खोया नहीं है, अपितु उन्होंने अपने व्यक्तित्व को समर्पित कर दिया है। यह आवश्यक है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति संभोग नहीं करता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह नपुंसक हो गया है। यदि उसकी इच्छा हो तो वह हजारों बार संभोग कर सकता है। किन्तु उसने स्वेच्छा से उसका त्याग किया है। *परं दृष्ट्वा निवर्तते*—उसकी अभिरुचि उच्चतर कोटि की है। कभी-कभी हम उपवास करते हैं, किन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि हम रोगग्रस्त हैं। हम स्वेच्छा से उपवास करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं भूखा नहीं हूँ अथवा मैं खा नहीं सकता हूँ। किन्तु हम स्वेच्छा से उपवास करते हैं।

**बाँब :** क्या शरणागत भक्त अपनी व्यक्तिगत रुचियाँ रख सकता है?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, पूर्ण रूप से।

**बाँब :** विभिन्न वस्तुओं के प्रति रुचि?

**श्रील प्रभुपाद :** हूँ?

**बाँब :** क्या वह अपनी व्यक्तिगत रुचियाँ व अरुचियाँ रखता है?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, वह प्रत्येक वस्तु रखता है। किन्तु वह कृष्ण को प्राथमिकता देता है। मान लीजिए कि मुझे यह रुचिकर लगता है किन्तु कृष्ण कहते हैं, “नहीं, तुम इसका उपयोग नहीं कर सकते हो।” तब मैं इसका उपयोग नहीं करूँगा। ऐसा कृष्ण के लिए है। कृष्ण सकारात्मक रूप से कहते हैं, “मुझे ये वस्तुएँ रुचिकर लगती हैं।” अतः हमें कृष्ण को वही वस्तु अर्पित करनी है जो उनको रुचिकर है और तत्पश्चात् हम प्रसाद ग्रहण करेंगे। कृष्ण को राधारानी प्रिय हैं। अतएव समस्त गोपिकाएँ राधारानी को कृष्ण की ओर धकेल रही हैं। “कृष्ण को यह गोपी प्रिय है, ठीक है इसे (उनके समीप) भेज दो।” यही कृष्णभावनामृत है। अपनी इन्द्रियों को नहीं अपितु कृष्ण की इन्द्रियाँ को संतुष्ट करना। वह भक्ति है। उसे प्रेम कहते हैं, कृष्ण के प्रति प्रेम। “कृष्ण को यह प्रिय है। मुझे उनको यह देना चाहिए।”

**बाँब :** कुछ प्रसाद मुझे रुचिकर लगते हैं तथा कुछ का स्वाद मेरी रुचि के तनिक भी अनुकूल नहीं होता है।

**श्रील प्रभुपाद :** आपको ऐसा नहीं करना चाहिए। पूर्णता यही है कि जो कुछ भी कृष्ण को अर्पित किया गया है, उसे आप स्वीकार करें। यही पूर्णता है। आप यह नहीं कह सकते हैं कि “मुझे यह रुचिकर है, यह रुचिकर नहीं है।” जब तक आप ऐसा भेद करते हैं, इसका अर्थ है कि आपने प्रसाद के महत्त्व को नहीं समझा है। कोई अरुचि अथवा रूचि नहीं। जो कुछ भी कृष्ण को रुचिकर है वह ठीक है।

**एक भक्त :** हाँ। किन्तु मान लीजिए कोई कुछ पकाता है, कृष्ण के लिए कोई प्रसाद, किन्तु वह इसे इतना स्वादिष्ट नहीं बनाता है, तथा यह...

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं, यदि वह भक्तिपूर्वक बनाया गया है तब वह कृष्ण को रुचिकर होगा। ठीक विदुर के समान। विदुर कृष्ण को केले खिला रहे थे, किन्तु वे इतने मग्न थे कि वे फल फेंकते जा रहे थे तथा कृष्ण को छिलका दिये जा रहे थे और कृष्ण खा रहे थे। [सब हँसते हैं।] कृष्ण को ज्ञात था कि वे भक्तिपूर्वक अर्पण कर रहे थे। यदि भक्ति हो तो कृष्ण कुछ भी खा सकते हैं। वह वस्तु भौतिक रूप से स्वादिष्ट है अथवा नहीं, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता है। भक्त इसी भौतिक कृष्ण का प्रसाद ग्रहण करता है चाहे वह भौतिक रूप से स्वादिष्ट हो अथवा नहीं। हमें प्रत्येक वस्तु को स्वीकार करना चाहिए।

**एक भक्त :** किन्तु यदि भक्ति न हो ?

**श्रील प्रभुपाद :** यदि भक्ति न हो तब कृष्ण स्वादिष्ट अथवा स्वादहीन किसी भी भोजन को पसन्द नहीं करते हैं। वे इसे स्वीकार नहीं करते हैं।

**एक भक्त :** भारत में...

**श्रील प्रभुपाद :** ओह! भारत, भारत। भारत की चर्चा मत करो। दर्शनशास्त्र की बात करो। यदि भक्ति न हो तो भारत में अथवा आपके देश में, कहीं भी कृष्ण कुछ स्वीकार नहीं करते हैं। भगवान् कृष्ण किसी वस्तु को इसलिए स्वीकार करने को बाध्य नहीं है क्योंकि वह स्वादिष्ट है अथवा मूल्यवान् है। कृष्ण के पास वैकुण्ठ में अनेकों सुस्वादु व्यंजन हैं। वे आपके भोजन के लिए लालायित नहीं हैं। वे आपकी भक्ति को स्वीकार करते हैं। वास्तविक वस्तु भक्ति है, भोजन नहीं। कृष्ण इस भौतिक जगत् का कोई भी खाद्य पदार्थ स्वीकार नहीं करते हैं। वे केवल भक्ति को स्वीकार करते हैं।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

“यदि कोई प्रेम के साथ पत्र, पुष्प, फल या जल मुझे अर्पण करता है, उसे मैं प्रीतिसहित स्वीकार करता हूँ क्योंकि वह मुझे प्रेम व भक्तिपूर्वक अर्पित किया गया है”—यह आवश्यक है। अतएव हम किसी ऐसे व्यक्ति को रसोई बनाने नहीं देते हैं, जो भक्त नहीं है। एक अभक्त के हाथ से कृष्ण कुछ भी स्वीकार नहीं करते हैं। वे क्यों स्वीकार करें? वे भूखे नहीं हैं। उन्हें किसी भोजन की आवश्यकता नहीं है। वे केवल भक्ति को ही स्वीकार करते हैं, बस। यही मुख्य बात है।

अतएव व्यक्ति को भक्त बनना होता है, एक कुशल रसोइया नहीं। किन्तु यदि वह भक्त है तब वह एक कुशल रसोइया भी होगा। वह स्वयमेव एक कुशल रसोइया बन जाएगा। अतएव व्यक्ति को केवल एक भक्त बनना होता है। तत्पश्चात् अन्य सब उत्तम योग्यताएँ अपनेआप आ जाएँगी। और यदि वह एक अभक्त है, तब कोई भी उत्तम योग्यता निरर्थक है। वह मानसिक स्तर पर है अतएव उसके पास कोई अच्छी योग्यता नहीं है।

**बाँब :** मैं अभी भी प्रसाद के बारे में कई बातें समझ नहीं पाया हूँ।  
**श्रील प्रभुपाद :** प्रसाद हमेशा प्रसाद होता है। किन्तु हम पर्याप्त मात्रा में उन्नत नहीं हुए हैं, इसलिए हमें कुछ प्रसाद पसन्द नहीं आता।

**बाँब :** मैंने देखा है कि कुछ प्रसाद अत्यन्त मसालेदार होते हैं और उनसे मेरे उदर में पीड़ा होती है।

**श्रील प्रभुपाद :** हूँ...यह भी रुचि न होने के कारण है, किन्तु रसोइये को इसका ध्यान रखना चाहिए। कृष्ण को सर्वोत्कृष्ट कोटि

का भोजन अर्पित करना चाहिए। अतः यदि वह कुछ निम्न श्रेणी का भोजन अर्पित करता है, तब वह अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर रहा है। किन्तु यदि कोई भक्त अर्पित करे तब कृष्ण कुछ भी स्वीकार कर सकते हैं, तथा भक्त कोई भी प्रसाद स्वीकार कर सकता है, यदि वह मसालों से युक्त हो तब भी। हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र को विष दिया था, पुत्र ने उसे कृष्ण को अर्पित किया तथा उसने उसे अमृत के रूप में पिया। अतः यदि यह (प्रसाद) दूसरों के लिए मसालों से युक्त है तब भी यह भक्त के लिए अत्यन्त सुस्वादु होता है। मसालेदार का तो प्रश्न ही क्या? पूतना राक्षसी ने कृष्ण को विष अर्पित किया था, सच्चा विष। किन्तु कृष्ण इतने भले हैं कि उन्होंने विचार किया, “यह मेरी माता के समान मेरे पास आई है,” अतएव उन्होंने विष ग्रहण कर लिया तथा उसका उद्धार किया। कृष्ण बुरे पक्ष को ग्रहण नहीं करते हैं। एक सज्जन व्यक्ति बुरे पक्ष को ग्रहण नहीं करता है—वह केवल भले पक्ष को ग्रहण करता है। ठीक मेरे एक ज्येष्ठ गुरु-भाई के समान—वह मेरे गुरु महाराज के साथ व्यापार करना चाहता था, किन्तु मेरे गुरु महाराज ने बुरे पक्ष को नहीं देखा। उन्होंने भले पक्ष को ग्रहण किया। उन्होंने विचार किया, “यह मेरी कुछ सेवा करने के उद्देश्य से आगे आया है।”

**बाँब :** समझ लीजिए कि कोई भक्त को कुछ शारीरिक तकलीफ है और उस के कारण वह कुछ प्रकार के व्यंजन नहीं ले सकता। उदाहरणार्थ, कुछ भक्त यकृत की तकलीफ के कारण घी नहीं खाते, तो क्या इन भक्तों को भी सभी प्रकार का प्रसाद ग्रहण करना चाहिए?

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं, नहीं। जो पूर्ण भक्त नहीं है वे भेद कर सकते हैं। किन्तु एक पूर्ण भक्त भेद नहीं करता है। आप एक पूर्ण भक्त

का अनुकरण क्यों करें? जब तक आप भेद करते हैं, आप पूर्ण भक्त नहीं हैं। अतः आप किसी पूर्ण भक्त का कृत्रिम तौर पर अनुकरण क्यों करें और सब कुछ खा लें? सार यह है कि पूर्ण भक्त किसी भी प्रकार का भेद नहीं करता है। जो कुछ भी कृष्ण को अर्पित किया जाता है, वह अमृत है। बस यही। अपने भक्त द्वारा अर्पित कुछ भी वस्तु कृष्ण स्वीकार करते हैं। “मेरे भक्त द्वारा जो कुछ भी मुझे अर्पित किया जाता है, मैं उसे स्वीकार करता हूँ।” शुद्ध भक्त के लिए भी ऐसा ही है। क्या आप यह बात अब भी नहीं समझे? एक पूर्ण भक्त कोई भेदभाव नहीं करता है। किन्तु यदि मैं एक पूर्ण भक्त नहीं हूँ, तथा मैं भेदभाव रखता हूँ, तब मैं एक पूर्ण भक्त का अनुकरण क्यों करूँ? मैं एक पूर्ण भक्त नहीं हूँ, अतएव प्रत्येक वस्तु को पचाना मेरे लिए सम्भव नहीं हो सकता है। भक्त को मूर्ख नहीं होना चाहिए। कहा गया है—*कृष्ण जे भजे से बड़ चतुर*। अतएव भक्त को अपने पद का ज्ञान होता है तथा उसमें इतनी बुद्धि होती है कि वह दूसरों से उसी के अनुसार व्यवहार कर सके।

सात

## कृष्णभावना में कर्म करना

फरवरी २९, १९७२ (सायंकाल क्रमशः)

**एक भारतीय सज्जन :** किस प्रकार के कर्मों से मनुष्य सत्कर्म अर्जित करता है?

**श्रील प्रभुपाद :** सत्कर्म का अर्थ है, वह कार्य जिनका वेदों में अनुमोदन है। यज्ञ करने पर विशेष रूप से बल दिया गया है। यज्ञ का अर्थ है, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के लिए किये गये कार्य। अतएव सत्कर्म का अर्थ है, वैदिक साहित्य में अनुमोदित किये गये यज्ञों का सम्पादन करना।

जिसके कार्य प्रशासन को संतुष्ट करते हैं, वही एक अच्छा तथा नियमों का पालन करने वाला नागरिक होता है। अतएव परमेश्वर भगवान् विष्णु को प्रसन्न करना ही सत्कर्म है। दुर्भाग्यवश आधुनिक लोगों को यह ज्ञात नहीं है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कौन हैं; फिर उन्हें प्रसन्न करने के विषय में तो कहना ही क्या? वे केवल भौतिक गतिविधियों में व्यस्त रहते हैं। इसलिए वे सभी केवल दुष्कर्म ही कर रहे हैं, अतः कष्ट भोग रहे हैं। वे ऐसे अन्धे हैं, जो अन्य अन्धों का नेतृत्व कर रहे हैं। दोनों ही दुष्कर्मी द्वारा पीड़ित हो रहे हैं। यह समझना अत्यन्त सरल है। यदि आप कुछ अपराध करते हैं तब आपको कष्ट होगा। यदि आप देश तथा जनता के हित के लिए कार्य करते हैं, तब लोग आपकी प्रशंसा करते हैं

तथा कभी-कभी आपको पदवी भी प्रदान करते हैं। यह सत्कर्म तथा दुष्कर्म है।

अतः सत्कर्म का अर्थ है, आप किसी भौतिक सुख का भोग करते हैं, दुष्कर्म का अर्थ है, आप भौतिक दुःख से पीड़ित होते हैं। सत्कर्म से आपको एक अच्छे परिवार में जन्म प्राप्त होता है; आपको वैभव तथा धन प्राप्त होता है। आप एक पढ़े लिखे विद्वान् बनते हैं तथा सुन्दर भी बनते हैं।

**बाँब :** उस व्यक्ति के विषय में आपका क्या कहना है, जिसे भगवान् का अधिक बोध नहीं है, किन्तु...

**श्रील प्रभुपाद :** तब वह एक पशु है। पशु को यह ज्ञात नहीं होता है कि श्रेष्ठ क्या है। वह व्यक्ति जिसे यह ज्ञात नहीं है कि भगवान् क्या है, अथवा जो भगवान् को समझने का प्रयत्न नहीं करता है वह एक पशु है।

**बाँब :** अबोध लोगों के विषय में आपका क्या विचार है?

**श्रील प्रभुपाद :** पशु अत्यन्त अबोध होता है। यदि आप उसका गला काट दें तो वह विरोध नहीं करेगा। अतएव बोध एक अत्यन्त श्रेष्ठ योग्यता नहीं है। पशु सभी अबोध हैं। अतएव आपको उनका गला काटने का अवसर प्राप्त होता है। अतएव अबोध बन जाना कोई बड़ी योग्यता नहीं है। हमारा प्रस्ताव है कि व्यक्ति को अत्यन्त बुद्धिमान् होना चाहिए और तब वह कृष्ण को समझ सकता है। एक अबोध, अज्ञानी मूर्ख बन जाना एक श्रेष्ठ योग्यता नहीं है। सरलता ठीक है, किन्तु व्यक्ति को मूर्ख नहीं होना चाहिए।

**बाँब :** क्या आप मुझे पुनः बता सकते हैं कि बुद्धि क्या है?

**श्रील प्रभुपाद :** बुद्धि का अर्थ यह है कि व्यक्ति जानता है कि वह क्या है, यह संसार क्या है, भगवान् क्या हैं, इन सभी के बीच क्या

सम्बन्ध है। पशु को यह ज्ञात नहीं होता है कि वह क्या है। वह विचार करता है कि वह यह शरीर है। उसी भाँति जिसे यह ज्ञान नहीं है कि वह क्या है, वह बुद्धिमान् नहीं है।

**बाँब :** उस व्यक्ति के विषय में आपका क्या विचार है जो उचित कार्य करता है अथवा करने का प्रयास करता है तथा वह जो कार्य करता है उसके प्रति अचेत रहने के स्थान पर अत्यन्त सचेत रहता है? जैसे कि वह सेवक जो अपने स्वामी के प्रति अत्यन्त वफादार है, किन्तु जानता है कि वह ईमानदार न रहे तो भी वह पकड़ा नहीं जाएगा। कोई व्यक्ति किसी भी स्थिति में ईमानदार बना रहे तो...क्या यह एक प्रकार का सत्कर्म है?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, ईमानदार होना भी सत्कर्म है। सज्जन किस प्रकार बना जा सकता है इसका वर्णन *भगवद्गीता* में अत्यन्त विस्तारपूर्वक किया गया है—*दैवी सम्पद्धिमोक्षाय निबन्धायासुरी मता*। अतः यदि आप *दैवी सम्पद्*—दिव्य गुणों से युक्त हो जाते हैं, तब, *विमोक्षाय*—आप की मुक्ति हो जाएगी। तथा *निबन्धायासुरी*—यदि आप आसुरी गुणों से युक्त हैं, तब आप और अधिक बंधन में पड़ते जाएँगे। दुर्भाग्यवश आधुनिक सभ्यता को यह ज्ञात नहीं है कि मोक्ष क्या है तथा बन्धन क्या है। वे इतने अज्ञानी हैं कि उन्हें ज्ञात नहीं है।

यदि मैं आपसे प्रश्न करूँ कि आप मोक्ष से क्या समझते हैं, क्या आप उत्तर दे सकते हैं? [कोई उत्तर नहीं।] तथा यदि मैं आपसे प्रश्न करूँ कि बन्धन से आप क्या समझते हैं, क्या आप उत्तर दे सकते हैं? [पुनः कोई उत्तर नहीं।] वैदिक साहित्य में—मोक्ष तथा बन्धन—ये शब्द हैं, किन्तु आजकल लोगों को यह भी ज्ञात नहीं है कि मोक्ष क्या है तथा बन्धन क्या है। वे इतने अज्ञानी

तथा मूर्ख हैं और फिर भी उन्हें ज्ञान में अपनी प्रगति पर गर्व है। आप एक प्रोफेसर, अध्यापक हैं, क्या आप उत्तर दे सकते हैं कि मोक्ष क्या है ?

**बाँब :** पर्याप्त रूप से नहीं, क्योंकि यदि मैं स्पष्ट कर सकता तो मैं अत्यंत शीघ्रतापूर्वक मुक्त हो जाता।

**श्रील प्रभुपाद :** किन्तु यदि आपको यह ज्ञात नहीं है कि मोक्ष क्या है तब द्रुत अथवा धीमी गति से मोक्ष कैसा ? [सब लोग हँसते हैं।] सर्वप्रथम यह ज्ञात होना चाहिए कि मोक्ष क्या है। यदि आपको यह ज्ञात नहीं है कि रेलगाड़ी कहाँ जा रही है, तब वह द्रुतगामी है अथवा धीमी है, यह पूछने तथा समझने का लाभ ही क्या है ? आप प्रतिदिन मुझे प्रश्न करते हैं। अब मैं आपसे प्रश्न कर रहा हूँ।

**बाँब :** (हँसता है) आह...ठीक है...मैं कुछ क्षण विचार करना चाहूँगा।

**श्रील प्रभुपाद :** श्रीमद्भागवतम् में मोक्ष का वर्णन किया गया है। मोक्ष के लिए संस्कृत का ठीक शब्द मुक्ति है। अतः श्रीमद्भागवतम् में उसकी परिभाषा दी गई है—*मुक्तिर्हित्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः।* मनुष्य को समस्त निरर्थक कार्य करना बन्द कर देना चाहिए तथा अपनी मूल स्थिति में स्थित हो जाना चाहिए। यह मुक्ति है। दुर्भाग्यवश आजकल किसी को अपनी मूल स्थिति तथा उचित रूप से कार्य करने का ज्ञान नहीं है। आधुनिक जनता अपने जीवन के विषय में इतनी अज्ञानपूर्ण है—अतएव यह एक अत्यन्त अटपटी स्थिति है। उन्हें ज्ञात नहीं है।

**बाँब :** क्या आप मुझे यह बता सकते हैं कि ईमानदार कौन है ?

**श्रील प्रभुपाद :** यदि किसी को यही ज्ञात न हो कि ईमानदारी क्या है, तब वह किस प्रकार ईमानदार हो सकता है ? किन्तु यदि

आपको यह ज्ञात हो कि ईमानदारी क्या है, तो आप ईमानदार हो सकते हैं। ईमानदारी क्या है ? सर्वप्रथम इसकी व्याख्या कीजिए।

**बाँब :** आपको जो वास्तव में उचित लगे वही करना ईमानदारी है।

**श्रील प्रभुपाद :** एक चोर को अनुभव हो रहा है, “अपनी सन्तान के भरणपोषण के लिए मुझे चोरी करनी है। यह उचित है।” क्या इसका अर्थ यह है कि वह ईमानदार है ? कसाई विचार करता है, “यह मेरा जीवन है। मुझे प्रतिदिन पशुओं का गला काटना ही चाहिए।” ठीक वैसे ही—वह शिकारी कौन है ? नारदमुनि एक बार एक शिकारी से मिले थे तथा उन्होंने उससे प्रश्न किया, “तुम इस प्रकार वध क्यों कर रहे हो ?” और उसने कहा, “ओह, यह मेरा व्यवसाय है। मेरे पिता ने मुझे इसकी शिक्षा दी थी।” अतः वह ईमानदारीपूर्वक अपने कार्य को कर रहा था। अतएव ईमानदारी की अनुभूति संस्कृति पर निर्भर है। एक चोर की संस्कृति हमसे भिन्न है। वह विचार करता है कि चोरी करना ईमानदारी का कार्य है।

**बाँब :** फिर ईमानदारी क्या है ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, यही मेरा प्रश्न है। [सब हँसते हैं।] वास्तविक ईमानदारी यह है कि आप दूसरे की सम्पत्ति पर अतिक्रमण न करें। यह ईमानदारी है। उदाहरण के रूप में यह मेरी मेज है। यदि आप जाते समय इसे ले जाना चाहें, तब क्या वह ईमानदारी है ? अतः ईमानदारी की सरल परिभाषा यह है कि आप दूसरे के अधिकार पर अतिक्रमण न करें। यही ईमानदारी है।

**बाँब :** फिर वह व्यक्ति जो ईमानदार है, सत्त्वगुण में स्थित होगा ? क्या यह ठीक है ?

**श्रील प्रभुपाद :** निश्चित रूप से, निश्चित रूप से। क्योंकि सत्त्वगुण का अर्थ है ज्ञान। अतएव यदि आपको ज्ञात है, “यह मेज मेरी नहीं

है, यह स्वामीजी की है”, तब आप इसे ले जाने की चेष्टा नहीं करेंगे। अतएव मनुष्य को ज्ञान होना चाहिए—पूर्ण ज्ञान—तब वह ईमानदार हो सकता है।

**बाँब :** अभी आपने कहा था कि सत्त्वगुण भगवान् का ज्ञान है। किन्तु भगवान् के विषय में अधिक ज्ञान न होते हुए भी कोई ईमानदार हो सकता है। बिना यह विचार किये कि वे इसलिए ईमानदार हैं, क्योंकि भगवान् की यह इच्छा है...उन्हें बस ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें ईमानदार होना चाहिए।

**श्रील प्रभुपाद :** भगवान् की इच्छा तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति ईमानदार हो। भगवान् विपरीत इच्छा क्यों करेंगे?

**बाँब :** अतः यह जाने बिना ही कि आप भगवान् की इच्छा का पालन कर रहे हैं, आप भगवान् की इच्छा का पालन कर सकते हैं?

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं, बिना जाने पालन करना—यह निरर्थक है। आपको भगवान् के आदेश का ज्ञान होना चाहिए। तथा यदि आप उसका पालन करें, तब यह ईमानदारी होगी।

**बाँब :** क्या भगवान् को जाने बिना कोई ईमानदार नहीं हो सकता है?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, क्योंकि भगवान् परम स्वामी, परम भोक्ता तथा परम सखा हैं। यह *भगवद्गीता* का कथन है। यदि किसी को इन तीन तथ्यों का ज्ञान है तब वह पूर्ण ज्ञान में स्थित है। केवल ये तीन बातें : भगवान् प्रत्येक वस्तु के स्वामी हैं, भगवान् प्रत्येक व्यक्ति के सखा हैं तथा भगवान् प्रत्येक वस्तु के भोक्ता हैं। उदाहरण के लिए प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि शरीर में उदर भोक्ता है, हाथ, पैर, नेत्र तथा कान नहीं। ये केवल उदर की सहायता करने के लिए ही हैं।

उदाहरण के लिए, नेत्र—उदर के लिए भोजन कहाँ है यह देखने के लिए गिद्ध सात मील ऊपर जाता है। यह सत्य है कि नहीं?

**बाँब :** ऐसा ही है।

**श्रील प्रभुपाद :** तत्पश्चात् पंख वहाँ उड़ कर जाते हैं, तथा जबड़े भोजन पकड़ते हैं। जिस प्रकार शरीर में उदर भोक्ता है, उसी भाँति, भौतिक अथवा आध्यात्मिक, समस्त सृष्टि के केन्द्र भगवान् अर्थात् कृष्ण हैं। वे भोक्ता हैं। केवल अपने शरीर पर विचार करके हम यह तथ्य समझ सकते हैं। शरीर भी एक सृष्टि है। समस्त ब्रह्माण्ड में जिस यान्त्रिक प्रकृति के दर्शन होते हैं, वही शरीर में भी दिखाई देती है। आप जहाँ कहीं भी जाएँ, आपको वही यान्त्रिक योजना दिखाई देगी, पशुओं में भी। मानव शरीर में अथवा सृष्टि में—लगभग वही यन्त्र-व्यवस्था। अतः आप सरलता से यह समझ सकते हैं कि इस शरीर...मेरे शरीर, आपके शरीर...में उदर ही भोक्ता है। एक केन्द्रीय भोक्ता है, तथा उदर एक सखा भी है। क्योंकि यदि आप भोजन नहीं पचा पाते हैं, तब शरीर के अन्य सब अंग भी शिथिल पड़ जाते हैं। अतएव उदर मित्र है। यह भोजन को पचा कर शक्ति को शरीर के सभी अंगों में वितरित करता है। है कि नहीं?

**बाँब :** ऐसा ही है।

**श्रील प्रभुपाद :** उसी भाँति समस्त सृष्टि के केन्द्रिय उदर भगवान् अथवा कृष्ण हैं। वे भोक्ता हैं, वे सखा हैं तथा परम स्वामी के रूप में वे सबका पालन कर रहे हैं। ठीक वैसे ही जैसे एक राजा अपने राज्य के समस्त नागरिकों का पोषण कर सकता है, क्योंकि वह स्वामी है। स्वामी हुए बिना कोई प्रत्येक व्यक्ति का सखा किस प्रकार हो सकता है?

अतः इन सब बातों को समझना आवश्यक है। कृष्ण परम स्वामी, परम भोक्ता तथा परम सखा हैं। यदि आपको इन तीन तथ्यों का ज्ञान है तब आपका ज्ञान सम्पूर्ण है; तब आपको और कुछ समझने की आवश्यकता नहीं है। यस्मिन् विज्ञाते सर्वमेवं विज्ञातं भवति। यदि आप इन तीन सूत्रों से कृष्ण को समझ लेते हैं, तब आपका ज्ञान पूर्ण है। आपको और किसी ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। किन्तु लोग सहमत नहीं होंगे। “कृष्ण को स्वामी क्यों होना चाहिए? हिटलर को स्वामी होना चाहिए। निक्सन...” यही हो रहा है। इसीलिए आप कष्ट में हैं। आप यदि इन्हीं तीन बातों को समझ लेते हैं, तब आपका ज्ञान पूर्ण है। किन्तु हम स्वीकार नहीं करेंगे—हम इन तीन तथ्यों को समझने में इतने विघ्न डालेंगे, और यही हमारे कष्टों का कारण है। भगवद्गीता(५.२९)में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है—

*भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।*

*सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥*

[“जो व्यक्ति मुझे समस्त यज्ञों तथा तपों का चरम प्रयोजन, समस्त लोकों तथा देवताओं का परमेश्वर, समस्त जीवों का कल्याणकर्ता और शुभचिन्तक के रूप में जानता है तथा पूर्ण रूप से मेरी चेतना में रहता है, वही भौतिक दुःखों के कष्ट से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।”] किन्तु हम इसे स्वीकार नहीं करेंगे। हम इतने सारे मिथ्या स्वामी, मिथ्या सखा, मिथ्या भोक्ता प्रस्तुत करेंगे तथा वे परस्पर युद्ध करेंगे। जगत् की यही स्थिति है। यदि लोग इस ज्ञान को ग्रहण करें तब तत्काल ही शान्ति होगी (*शान्तिमृच्छति*)। यही ज्ञान है तथा यदि कोई इस नियम का पालन करता है, वह ईमानदार है। वह यह अधिकार नहीं जताता है कि “यह

मेरा है।” उसे ज्ञात है, “यह कृष्ण का है, अतएव प्रत्येक वस्तु का उपयोग कृष्ण की सेवा के लिए करना चाहिए।” यह ईमानदारी है। यदि यह पेंसिल मेरी है, तब मेरे शिष्यों के लिए सदाचार यह है कि वे पूछें?, “क्या मैं इस पेंसिल का उपयोग कर सकता हूँ?” तब मैं उत्तर दूँगा, “हाँ, कर सकते हो।”

इसी तरह यदि मुझे ज्ञात है कि प्रत्येक वस्तु के स्वामी कृष्ण हैं, तब मैं उनकी आज्ञा के बिना किसी वस्तु का उपयोग नहीं करूँगा। यही ईमानदारी है। तथा यही ज्ञान है। जिसे यह पता नहीं है वह अज्ञानी व मूर्ख है तथा एक मूर्ख व्यक्ति अपराध करता है। समस्त अपराधी मूर्ख होते हैं। अज्ञानवश व्यक्ति नियम भंग करता है। अतः अज्ञान आनन्द नहीं है, किन्तु जहाँ पर अज्ञान आनन्द हो वहाँ पर बुद्धिमान् होना मूर्खता है। यही कठिनाई है। समस्त जगत् अज्ञान का आनन्द उठा रहा है। तथा जब आप कृष्णभावनामृत के विषय में चर्चा करते हैं तब वे इसके महत्त्व को नहीं समझ पाते हैं। यदि मैं कहूँ, “कृष्ण स्वामी हैं, आप स्वामी नहीं हैं,” तब आप अधिक सन्तुष्ट नहीं होंगे। [वे हँसते हैं।] देखिए—अज्ञान आनन्द है।

वास्तविक सत्य को कहना करना मेरी मूर्खता है। अतः जहाँ पर अज्ञान ही आनन्द है, वहाँ पर बुद्धिमान् होना मूर्खता है। हम, लोगों को अप्रसन्न करने का संकट मोल ले रहे हैं, तथा वे सोचेंगे कि हम सब मूर्ख हैं। यदि मैं एक धनी व्यक्ति से कहूँ, “आप स्वामी नहीं हैं। कृष्ण स्वामी हैं, अतएव आपके पास जो भी धन है उसे कृष्ण के लिए व्यय कीजिए,” तब वह क्रुद्ध हो जाएगा। *उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।* “यदि आप दुष्ट व्यक्ति को उपदेश दें, तो वह क्रुद्ध हो जाएगा।” अतएव हम भिक्षुक के रूप



में जाते हैं, “श्रीमान् जी, आप एक अत्यन्त भले व्यक्ति हैं। मैं एक संन्यासी भिक्षुक हूँ, मैं एक मन्दिर का निर्माण करना चाहता हूँ। क्या आप कुछ धन दे सकते हैं?” तब वह विचार करेगा, “अरे! यह एक भिक्षुक है। इसे कुछ धन दे देना चाहिए।” [सब हँसते हैं] किन्तु यदि मैं कहूँ, “महोदय! आपके पास करोड़ों डॉलर हैं। वह कृष्ण का धन है। उसे मुझे दे दीजिए। मैं कृष्ण का सेवक हूँ।” [सब हँसते हैं] वह मुझे भगा देगा। वह प्रसन्न नहीं होगा। उल्टे, यदि मैं एक भिक्षुक के रूप में जाऊँगा, तो वह मुझे कुछ दे देगा और यदि मैं उसे सच्चाई बताऊँ तब वह मुझे एक पाई भी नहीं देगा। [सब हँसते हैं।] हम एक भिक्षुक के रूप में उसे विश्वास दिला देते हैं। हम भिक्षुक नहीं हैं। हम कृष्ण के सेवक हैं।

हमें अपने लिए किसी से कुछ भी नहीं चाहिए क्योंकि हमें ज्ञात है कि कृष्ण हमें सब कुछ प्रदान करेंगे। यह ज्ञान है। उदाहरण के लिए कभी-कभी कोई बालक सौ डालर का नोट ले लेता है, अतः हम उसकी चाटुकारी करते हैं। “अरे, तुम कितने अच्छे हो। कृपया ये मीठी गोलियाँ ले लो और वह कागज मुझे दे दो। वह कुछ नहीं है, केवल एक कागज है।” वह कहेगा, “अरे, हाँ। लीजिए। यह अच्छी है।” वह दो पैसे की गोलियों के लिए सौ डालर का नोट लौटा देता है। अतः हमें इस प्रकार भिक्षा माँगनी पड़ती है। क्यों? क्योंकि कृष्ण का धन लेने से व्यक्ति को नर्क में जाना पड़ेगा। अतएव किसी न किसी प्रकार से उससे कुछ धन ले लो और उसे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में संलग्न कर दो।

**बाँब :** और फिर वह नर्क में नहीं जाएगा?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। आप उसे नर्क में जाने से बचाते हैं क्योंकि कृष्ण के लिए व्यय की गई एक पाई का भी हिसाब होगा। “अरे,

इस व्यक्ति ने एक पाई दी है।” इसे *अज्ञात सुकृति* कहते हैं। [वह भक्तिमय सेवा जिसे व्यक्ति अनजाने में करता है] लोग अपने विचारों में अत्यन्त निर्धन हैं। अतएव सन्त जन उन्हें किंचित् ज्ञान देने का प्रयत्न करते हैं। वे उन्हें कृष्ण की सेवा का अवसर प्रदान करने का प्रयास करते हैं। यह सन्त जन का कर्तव्य है। किन्तु यदि वह दूसरों से धन लेकर अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए उसका उपयोग करता है, तब वह नर्क में जाता है। तब वह समाप्त हो जाता है। तब वह एक वंचक है; वस्तुतः वह एक अपराधी है। आप किसी से एक पाई भी लेकर अपनी इन्द्रियतृप्ति पर व्यय नहीं कर सकते हैं।

**बाँब :** मैं उन लोगों के बारे में सोचता हूँ जो कृष्णभावनामय नहीं हैं।

**श्रील प्रभुपाद :** कृष्ण का अर्थ है भगवान्।

**बाँब :** वे किंचित् भगवद्भावनामय हैं। किन्तु फिर भी ये व्यक्ति इस सीमा तक ईमानदार हैं कि वे दूसरों से कुछ भी नहीं लेते हैं तथा वे अन्य लोगों के साथ ईमानदार रहने का प्रयास करते हैं। क्या ये...

**श्रील प्रभुपाद :** वे अन्य लोगों से नहीं लेते हैं, किन्तु वे भगवान् से लेते हैं।

**बाँब :** तब ये लोग कुछ सीमा तक भले हैं?

**श्रील प्रभुपाद :** वे भले नहीं हैं। यदि वह यह सिद्धान्त नहीं सीखता है कि भगवान् स्वामी हैं, तब वह भला नहीं है।

**बाँब :** मैं उन निर्धन लोगों के विषय में विचार कर रहा हूँ जिन्हें धन तथा अन्न की आवश्यकता है किन्तु वे इन्हें प्राप्त करने के लिए अपराध नहीं करते हैं। उनके आस-पास के सभी लोग चोरी कर

रहे हों, किन्तु ये लोग फिर भी दृढ़ रहते हैं तथा चोरी नहीं करते हैं। किसी न किसी प्रकार ये लोग इस बात के अधिकारी हैं कि इनके साथ कुछ अच्छी घटना घटे।

**श्रील प्रभुपाद :** किन्तु जो व्यक्ति यह विचार कर रहा है कि वह चोरी नहीं कर रहा है वह भी चोरी कर रहा है, क्योंकि उसे यह ज्ञात नहीं है कि प्रत्येक वस्तु पर कृष्ण का अधिकार है। अतएव वह जो कुछ भी स्वीकार कर रहा है, उसे वह चुरा ही रहा है।

**बाँब :** क्या वह छोटा चोर है ?

**श्रील प्रभुपाद :** हो सकता है आपको यह ज्ञात न हो कि यह दुशाला मेरा है, किन्तु यदि आप इसे ले जाएँ तब क्या आप चोरी नहीं कर रहे हैं।

**बाँब :** किन्तु यदि मैं यह जानते हुए भी कि यह आपका है इसे ले जाऊँ तो मैं तब की अपेक्षा अधिक बुरा चोर हूँ जब मैं यह न जानते हुए कि यह किसका है इसे ले जाऊँ। मैं यह सोचता हूँ कि कदाचित् यह किसी का न हो और मैं इसे ले लेता हूँ।

**श्रील प्रभुपाद :** वह भी चोरी है। क्योंकि यह किसी न किसी का तो होगा ही। आप बिना उसकी आज्ञा के इसे ले जाते हैं। आपको यह ज्ञात भले ही न हो कि इसका स्वामी कौन है, किन्तु आपको यह तो ज्ञात है, “यह किसी न किसी का अवश्य है।” यह ज्ञान है। कभी-कभी हम सड़क पर कितनी ही मूल्यवान् वस्तुएँ पड़ी देखते हैं—सड़क सुधार अथवा बिजली के काम के लिए पड़ी सरकारी सम्पत्ति। कोई आदमी यह सोच सकता है, “सौभाग्यवश ये वस्तुएँ यहाँ पड़ी हैं। अतः मैं इन्हें ले जा सकता हूँ।” क्या यह चोरी नहीं है ?

**बाँब :** यह चोरी है।

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। उसे यह ज्ञात नहीं है कि यह सब सरकारी सम्पत्ति है। वह इसे उठा ले जाता है। वह चोरी है। जब वह पकड़ा जाता है तब उसे जेल होती है और दण्ड मिलता है। अतः उसी भाँति आप जो कुछ भी एकत्र कर रहे हैं—मान लीजिए आप नदी से एक गिलास पानी पी रहे हैं। क्या नदी आपकी सम्पत्ति है ?

**बाँब :** नहीं।

**श्रील प्रभुपाद :** फिर ? यह चोरी है। आपने नदी की रचना नहीं की है। आपको यह ज्ञात नहीं है कि उसका स्वामी कौन है। अतएव यह आपकी सम्पत्ति नहीं है। अतएव यह जानते न हुए कि यह किसकी है, यदि आप एक गिलास जल भी पी लेते हैं, तब आप चोर हैं। अतः आप यह सोच सकते हैं, “मैं ईमानदार हूँ।” किन्तु वस्तुतः आप एक चोर हैं। आपको कृष्ण का स्मरण करना चाहिए। “हे कृष्ण, यह आपकी रचना है, अतः दया करके मुझे पीने की आज्ञा दें।” यह ईमानदारी है। अतएव एक भक्त सदैव कृष्ण का चिन्तन करता है। समस्त गतिविधियों में, “यह कृष्ण का है।” यह ईमानदारी है। अतएव कृष्णभावनामृत से विहीन प्रत्येक व्यक्ति दुष्ट, चोर, कपटी तथा डाकू है।

अतएव हमारा निष्कर्ष है कि जो कृष्ण को नहीं समझता है उसके पास कोई अच्छी योग्यता नहीं है। न तो वह ईमानदार है, न उसको ज्ञान है। अतएव वह एक निम्नकोटि का मनुष्य है। यह ठीक है न ? यह अन्धविश्वास नहीं है। यह एक तथ्य है। तो आप समझ गये न कि ज्ञान क्या है तथा ईमानदारी क्या है ?

**बाँब :** एक प्रकार से।

**श्रील प्रभुपाद :** और क्या कोई दूसरा प्रकार भी है? [बाँब हँसता है] क्या कोई और प्रकार है? इसका खण्डन करो। [बाँब पुनः हँसता है। श्रील प्रभुपाद भी हँसते हैं।] अन्य प्रकार? क्या कोई विकल्प है? हम ऐसी कोई बात नहीं कहते हैं जिसका कोई खण्डन कर सके। ऐसा अनुभव हमें है। इसके विपरीत हम सब का खण्डन करते हैं “कोई और प्रश्न है?” अब तक हमें कृष्ण का संरक्षण प्राप्त हुआ है। बड़ी-बड़ी सभाओं में, बड़े-बड़े देशों में, प्रवचन के उपरान्त मैं प्रश्न करता हूँ, “कोई प्रश्न करना है?”

**बाँब :** अब मुझे कोई प्रश्न नहीं पूछना है।

**श्रील प्रभुपाद :** लंदन के कॉनवे हॉल में हमारा बारह दिन का भाषण था। प्रत्येक सभा के उपरान्त मैं प्रश्न करता था, “क्या कोई प्रश्न है?”

**बाँब :** क्या आपसे अनेक प्रश्न किये गये?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। अनेक मूर्खतापूर्ण प्रश्न।

**बाँब :** मैं एक प्रश्न और करना चाहता हूँ। मूर्ख होने से क्या तात्पर्य है?

**श्रील प्रभुपाद :** जिसे कुछ भी ज्ञान न हो उसे मूर्ख समझना चाहिए।

**एक भारतीय सज्जन :** प्रभुपाद, मेरा एक व्यक्तिगत प्रश्न है। क्या मैं प्रश्न कर सकता हूँ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ।

**भारतीय सज्जन :** कुछ काल पूर्व कलकत्ता में लोगों ने एक सप्ताह मनाया था। उसका नाम रखा था, “पशुओं के प्रति क्रूरता रोको सप्ताह।”

**श्रील प्रभुपाद :** यह एक अन्य मूर्खता है। वे क्रूरता रोकने का विज्ञापन कर रहे हैं तथा वे ही हजारों वधशालाओं को चला रहे हैं। आप देखते हैं न? यह एक अन्य मूर्खता है। वे नियमित रूप से पशुओं के प्रति क्रूरता करते हैं तथा उसे रोखने के लिए अब एक संस्था की स्थापना कर रहे हैं। यह तो उसी प्रकार हुआ जैसे चोरो का एक दल “भला व्यक्ति तथा सम्बन्धित” (गुडमैन एण्ड कम्पनी) के नाम से सम्बोधित करे।

**भारतीय सज्जन :** अतएव मैं आपसे यह पूछना...

**श्रील प्रभुपाद :** आपके प्रश्न करने से पूर्व ही मैं उत्तर देता हूँ। इसके पीछे दार्शनिक सिद्धान्त यह है कि जब किसी पशु को उचित आहार नहीं दिया जाता है, तब वह क्रूरता है। अतएव इसे भूखा मरने देने की अपेक्षा उसका वध कर देना श्रेयस्कर है। यही उनका सिद्धान्त है। ऐसा है कि नहीं?

**बाँब :** हाँ।

**श्रील प्रभुपाद :** वे कहते हैं, “उसे इतना कष्ट सहन करने देने से बेहतर है कि उसका वध कर दें।” यह सिद्धान्त कम्युनिस्ट देशों में आ रहा है। एक वृद्ध पुरुष, पितामह कष्ट भोग रहा है, अतः उसे मार देना श्रेयस्कर है। तथा अफ्रिका में मानवों का एक वर्ग ऐसा है जो अपने परम-पितामहों का वध करने का उत्सव मनाते हैं।

**एक भक्त :** मेरे एक चाचा चाची थे। वे सेना में काम करते थे। जब वे परदेश गये, वे अपने कुत्ते को अपने साथ न ले जा सके। अतः उन्होंने कहा, “बेचारा कुत्ता। हमारे साथ न रह पाने के कारण बहुत दुःखी होगा,” अतएव उन्होंने उसे चिर निद्रा में सुला दिया— वध कर दिया।

**श्रील प्रभुपाद :** गाँधी के जीवन में भी ऐसा हुआ था। उन्होंने एक बार किसी गाय अथवा बछड़े का वध किया था। वह बहुत कष्ट पा रहा था। अतएव गाँधी ने आदेश दिया, “इसे कष्ट भोगने देने की अपेक्षा, इसका वध कर दो।”

**गिरिराज :** कल आपने कहा था कि अपने शिष्यों के पापों के कारण उनके गुरु को कष्ट भोगना पड़ सकता है। पापों से आपका क्या अभिप्राय है ?

**श्रील प्रभुपाद :** दीक्षा के समय आप वचन देते हैं, “मैं विधि-विधानों का पालन करूँगा।” यदि आप पालन नहीं करते हैं तब वह पाप है। अत्यन्त सरल सी बात है। आप वचन भंग करते हैं तथा गन्दे कर्म करते हैं। अतएव आप पापी हैं। है कि नहीं ?

**गिरिराज :** हाँ। अन्य भी कुछ ऐसी बातें हैं, जिन्हें करने का हमें आदेश दिया जाता है, किन्तु जिन्हें हम प्रयास करने पर भी पूर्णता से नहीं कर पाते हैं।

**श्रील प्रभुपाद :** आप करने का प्रयास करते हैं और कर नहीं पाते हैं ? ऐसा कैसे है ?

**गिरिराज :** जैसे कि ध्यानपूर्वक जप करना। कभी-कभी हम करने का प्रयास करते हैं किन्तु...

**श्रील प्रभुपाद :** यह कोई दोष नहीं है। मान लीजिए कि आप कुछ करने का प्रयास कर रहे हैं। अपनी अनुभवहीनता के कारण यदि कभी-कभी आप असफल होते हैं, तब वह दोष नहीं है। आप प्रयास कर रहे हैं। *भागवतम्* में एक श्लोक है कि यदि कोई भक्त अपना पूर्ण प्रयास कर रहा है, किन्तु अपनी असमर्थता के कारण वह कभी-कभी असफल हो जाता है, तब कृष्ण उसे क्षमा कर देते

हैं। तथा *भगवद्गीता* में भी कृष्ण कहते हैं, *अपि चेतसुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्*। “यदि कोई गम्भीरता से मेरा पूजन कर रहा है और कभी कोई अत्यन्त नीच कर्म कर देता है फिर भी उसे सन्तसमान ही समझना चाहिए।” कभी-कभी अपनी इच्छा से नहीं अपितु गत बुरी आदतों के कारण व्यक्ति कुछ मूर्खतापूर्ण कार्य कर बैठता है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वह दोषी है। किन्तु उसे उसके लिए पश्चात्ताप अवश्य करना चाहिए तथा जहाँ तक सम्भव हो सके, उसे इससे बचने का प्रयास करना चाहिए। किन्तु आदत दूसरा स्वभाव ही है। माया इतनी बलवान् है कि कभी-कभी आपके कठोर प्रयत्न करने पर भी आपको गड्ढे में ढकेल देती है। उसे क्षमा किया जा सकता है। कृष्ण क्षमा करते हैं। किन्तु जो लोग स्वेच्छापूर्वक कुछ कर रहे हैं, उन्हें क्षमा प्राप्त नहीं होती है। अपने भक्त होने के बल पर यदि मैं यह विचार करूँ, “मैं जप कर रहा हूँ, अतएव मैं ये सब मूर्खताएँ कर सकता हूँ, और यह सब रद्द हो जाएगा।” यह सबसे बड़ा अपराध है।

आठ

## कृष्णभावनामृत में प्रगति

(पत्रों का आदान-प्रदान)

स्प्रिंगफील्ड, न्यू जर्सी  
जून १२, १९७२

प्रिय प्रभुपाद,  
आपको मेरा सादर प्रणाम।

मैं न्यूयॉर्क के मन्दिर के भक्तों से संपर्क बनाए हुए हूँ। मुझे आशा है कि ऐसे श्रेष्ठ तथा प्रगतिशील भक्तों की संगति से मैं भी कृष्णभावनामृत में कुछ प्रगति करने में समर्थ होऊँगा। मेरी माँगेतर ने भी मन्दिर में आना प्रारम्भ कर दिया है तथा वह थोड़ा जप भी कर रही है। भारत से कृष्णभावनामृत के विषय पर मेरे पत्र लिखने के पूर्व उसे इस सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं था। अत्रेय ऋषि ने कृपापूर्वक हमें अपने घर पर आमंत्रित किया था, जिससे कि हम एक आदर्श गृहस्थ जीवन के दर्शन कर सकें।

अप्रैल मास के अन्त में मैं "पीस कोर" से अपनी सेवा की समाप्ति के लिए बम्बई गया था। सौभाग्यवश मैं वहाँ कुछ अस्वस्थ हो गया था जिससे मुझे बम्बई में दो सप्ताह रहना पड़ा। यह समय मैंने जुहू में कृपालु तथा उन्नत भक्तों के सान्निध्य में व्यतीत किया। दुर्भाग्यवश आप वहाँ से पाँच दिन पहले प्रस्थान कर चुके थे।

मुझे बहुत कम समझ में आता है, किन्तु मुझे कृष्णभावनामृत की प्रक्रिया में श्रद्धा है तथा मैं इसको अधिक-से-अधिक अंगीकार करने की आशा करता हूँ। मैं लॉस एंजलिस के मन्दिर के विवरण की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा हूँ यह विवरण मुझे अत्रेय ऋषि देने वाले हैं। मुझे यह भी आशा है कि मैं स्वयं आपका प्रवचन न्यूयॉर्क में सुन सकूँगा।

एक अत्यन्त अनधिकारी बालक के प्रति आपने जो कृपा प्रदर्शित की है, उसके लिए आपको धन्यवाद।

आपका सेवक  
बॉब कोहेन

ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी  
इस्कॉन लॉस एंजलिस  
जून १६, १९७२

बॉब कोहेन,  
स्प्रिंगफील्ड, न्यू जर्सी

प्रिय बॉब,

कृपया मेरा आशीर्वाद स्वीकार करें। तुम्हारे १२ जून १९७२ के पत्र के लिए तुम्हें मैं धन्यवाद देता हूँ। उसमें अभिव्यक्त तुम्हारी भावनाओं को पढ़ कर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ। मुझे यह जान कर अत्यन्त हर्ष हुआ कि तुम हम लोगों की संगति कर रहे हो। मुझे ज्ञात है कि तुम एक अत्यन्त भले, अत्यन्त बुद्धिमान् लड़के हो तथा तुम्हारा व्यवहार मृदु है। अतएव मुझे पूर्ण विश्वास है कि कृष्ण अति शीघ्र तुम पर अपने आशीर्वाद की वर्षा करेंगे तथा तुम्हें

कृष्णभावनामृत में पूर्ण सुख का अनुभव होगा। माया अथवा भौतिक प्रकृति के प्रति अपने मोह को स्वेच्छापूर्वक त्यागने से व्यक्ति कृष्णभावनामृत में प्रगति करता है। ऐसे त्याग को तपस्या कहते हैं। किन्तु हम बिना किसी ठोस कारण के तपस्या करने के लिए तत्पर नहीं होते हैं। अतएव तुम्हारे समान एक अच्छे दार्शनिक तथा वैज्ञानिक बुद्धि वाले व्यक्ति को सर्वप्रथम दिव्य ज्ञान के महत्त्व को समझना चाहिए। यदि तुमको ज्ञान प्राप्त हो जाए तब तपस्या स्वयमेव आ जाएगी, तथा तुम तभी आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करोगे। अतः जीवन की पूर्णता को प्राप्त करने की आशा रखने वाले व्यक्ति के लिए ज्ञान प्राप्त करना प्रथम कार्य है। अतएव तुम्हें मेरा परामर्श है कि हमारी पुस्तकों को जहाँ तक सम्भव हो, प्रतिदिन पढ़ो तथा उसकी विषय-वस्तु पर न्यूयॉर्क मन्दिर के भक्तों के साथ बारम्बार चर्चा करके, उसे विभिन्न दृष्टिकोणों से समझने का प्रयास करो। इस प्रकार शनैः शनैः तुमको विश्वास हो जाएगा तथा अपने शुद्ध मन की अभिवृत्ति तथा भक्ति के द्वारा तुम प्रगति करोगे।

हाँ, कृष्णभावनमृत की प्रक्रिया तथा मुझमें कुछ श्रद्धा होना ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रथम व एकमात्र माँग है। यदि श्रद्धा हो तो समझ आ ही जाती है। और जैसे-जैसे तुम्हारी समझ में वृद्धि होगी, वैसे-वैसे माया-शक्ति के जादू के प्रति तुम्हारी विरक्ति में भी वृद्धि होगी। तथा जब तुम स्वेच्छापूर्वक भौतिक जगत् में अपने बन्धनों को त्याग दोगे तब प्रगति निश्चित है।

मेरे विचार से हम मायापुर में हुए अपने सम्भाषण का टेप अभी अभी टाइप करा रहे हैं तथा उसे हम एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित करेंगे। इसे पूर्ण प्रश्न, पूर्ण उत्तर (अंग्रेजी में Perfect Questions and Perfect Answers) का नाम दिया जाएगा।

जैसे ही वे वितरण के लिए तैयार हो जाएगी, मैं तुम्हें एक प्रति भेजूँगा। इसी मध्य, रथयात्रा महोत्सव के लिए लंदन जाते हुए मैं दो-तीन दिन के लिए न्यूयॉर्क में रुकूँगा। मैं न्यूयॉर्क में कब पहुँचूँगा यह अभी निश्चित नहीं है, किन्तु जुलाई के प्रथम भाग में ही किसी समय आऊँगा। तुम मेरे पहुँचने की तारीख के सम्बन्ध में बलिमर्दन से नियमित संपर्क बनाए रखो, तथा न्यूयॉर्क में तुमसे पुनः भेंट कर के मुझे अत्यन्त हर्ष होगा। यदि तुम कुछ और प्रश्न पूछना चाहते हो तो हम पुनः विचार विमर्श करेंगे।

आशा है कि तुम स्वस्थ व प्रसन्न चित्त होगे।

सदैव तुम्हारा शुभेच्छु  
ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी

नौ

## भविष्य के विषय में निर्णय

न्यूयॉर्क—जुलाई ४, १९७२

**बॉब :** मुझे आप का अत्यन्त कृपापूर्ण पत्र लगभग एक सप्ताह पूर्व प्राप्त हुआ।

**श्रील प्रभुपाद :** तुम एक अत्यन्त बुद्धिमान् लड़के हो। तुम इस दर्शन को समझने का प्रयास कर सकते हो। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन्द्रियतृप्ति के लिए लोग इतनी अधिक शक्ति का अपव्यय कर रहे हैं। उन्हें इस तथ्य की जानकारी नहीं है कि अगले जन्म में क्या होने वाला है। एक अगला जीवन भी है, किन्तु मूर्ख इस बात को नहीं जानते हैं। यह जीवन अगले जीवन के लिए तैयारी है। यह उन्हें ज्ञात नहीं है। इस सरल ज्ञान के सम्बन्ध में आधुनिक शिक्षा तथा इसके विश्वविद्यालय पूर्णरूपेण अन्धकार में हैं। हम प्रतिक्षण शरीर परिवर्तित करते रहते हैं—यह एक वैज्ञानिक तथ्य है। इस शरीर को छोड़ने के उपरान्त हमें एक अन्य शरीर स्वीकार करना होगा। हम उस शरीर को किस प्रकार स्वीकार करेंगे? किस प्रकार का शरीर होगा? यह भी ज्ञात हो सकता है। उदाहरण के लिए यदि कोई शिक्षा ग्रहण कर रहा है, तब वह समझ सकता है कि जब वह अपनी परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाएगा, वह एक अभियन्ता अथवा चिकित्सक बनेगा। उसी भाँति इस जीवन में आप स्वयं को अगले जीवन में कुछ बनने के लिए तैयार कर सकते हैं।

**बार्बरा [बॉब की पत्नी] :** अगले जीवन में हम जो बनना चाहते हैं क्या हम उसका निर्णय कर सकते हैं?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ। आप निर्णय कर सकते हैं। हमने निर्णय कर लिया है कि अगले जीवन में हम कृष्ण के समीप जा रहे हैं। यह हमारा निर्णय है—अपने घर, भगवान् के धाम वापिस जाना। मान लीजिए कि आप एक अभियन्ता अथवा एक चिकित्सक बनना चाहते हैं, इस निर्णय के उपरान्त इसी लक्ष्य को सामने रख कर आप तैयारी करते हैं तथा अपनी शिक्षा ग्रहण करते हैं। उसी प्रकार आप यह निश्चित कर सकते हैं कि आपको अगले जीवन में क्या करना है। किन्तु यदि आप निर्णय नहीं लेते हैं, तब भौतिक प्रकृति इस बात का निर्णय करेगी।

**बार्बरा :** क्या ऐसा हो सकता है कि अपने विगत जीवन में मैं कृष्णभावनाभावित थी? क्या ऐसा सम्भव है कि अपने विगत जीवन में मैं कृष्ण भक्त थी तथा अब पुनः लौट आई हूँ।

**श्रील प्रभुपाद :** इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता है। किन्तु आप अभी कृष्ण भक्त बन सकती हैं। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन का लाभ उठाइए। जब कोई पूर्ण रूपेण कृष्ण का भक्त होता है, तब वह लौट कर नहीं आता है। किन्तु यदि किञ्चित् कमी रह जाए तब वापस आने की सम्भावना होती है। कुछ कमी रहने पर भी वह एक भले परिवार में लौट कर आता है। *शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते* ["असफल योगी किसी धनवान् अथवा धार्मिक परिवार में जन्म लेता है।"] मानवीय बुद्धि भविष्य के लिए निर्णय ले सकती है। पशु निर्णय नहीं कर सकता है। हममें विवेक शक्ति है, "यदि मैं यह करूँगा, तब मुझे लाभ होगा; यदि मैं वह

करूंगा, तब मुझे लाभ नहीं होगा।" मानव-जीवन में ऐसा करने की शक्ति है। अतः आपको इसका उचित उपयोग करना चाहिए। आपको यह ज्ञात होना चाहिए कि हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है तथा उसी के अनुसार निर्णय लेना चाहिए। यह मानव सभ्यता है।

**बार्बरा** : क्या आपने कभी कृष्ण के दर्शन किए हैं ?

**श्रील प्रभुपाद** : हाँ।

**बार्बरा** : आपने दर्शन किए हैं ?

**श्रील प्रभुपाद** : प्रतिदिन। प्रतिक्षण।

**बार्बरा** : किन्तु भौतिक देह में नहीं ?

**श्रील प्रभुपाद** : उनकी कोई भौतिक देह नहीं है।

**बार्बरा** : यहाँ मन्दिर में कृष्ण के चित्र हैं।

**श्रील प्रभुपाद** : वह भौतिक शरीर नहीं है। आप उसे भौतिक रूप से देख रही हैं क्योंकि आपके नेत्र भौतिक हैं। अतएव आप आध्यात्मिक रूप के दर्शन नहीं कर सकती हैं। अतएव वे कृपापूर्वक भौतिक शरीर में स्थित प्रतीत होते हैं, जिससे कि आप उनके दर्शन कर सकें। उन्होंने कृपापूर्वक स्वयं को आपके हेतु दर्शन-योग्य बनाया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उनका कोई भौतिक शरीर है। मान लीजिए कि अमेरिका के राष्ट्रपति कृपा करके आपके घर पधारते हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि आपकी स्थिति तथा उनकी स्थिति समान है। यह उनकी कृपा है। प्रेमवश वे आपके घर आ सकते हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे उसी स्तर पर हैं जिस पर आप हैं। उसी प्रकार हम अपने वर्तमान नयनों से कृष्ण के दर्शन नहीं कर सकते हैं, अतएव कृष्ण हमारे समक्ष एक चित्र के रूप में, पत्थर की मूर्ति के रूप में अथवा काष्ठ-

प्रतिमा के रूप में प्रकट होते हैं। कृष्ण इन चित्रों तथा काष्ठादि से भिन्न नहीं हैं, क्योंकि प्रत्येक वस्तु कृष्ण है।

**बार्बरा** : हमारी मृत्यु के पश्चात् हमारे आत्मा का क्या होता है ?

**श्रील प्रभुपाद** : आपको दूसरी देह प्राप्त होती है।

**बारबारा** : तत्काल ?

**श्रील प्रभुपाद** : हाँ। जैसे आप अपना घर परिवर्तन करते समय, आप पहले अपना नया घर निश्चित कर लेते हैं, तत्पश्चात् आप इस घर को त्याग कर वहाँ जाते हैं।

**बार्बरा** : तो क्या हमें यह ज्ञात होता है कि हमें किस प्रकार का शरीर प्राप्त होगा ?

**श्रील प्रभुपाद** : हाँ, यदि आप योग्य हैं तब। अन्यथा प्रकृति इसका प्रबन्ध करेगी। जिन्हें ज्ञान है—उन्हें ज्ञात होता है कि कैसा शरीर मिलने वाला है। किन्तु जिन्हें ज्ञान नहीं है, उनके लिए प्रकृति प्रबन्ध करेगी। यदि आपको ज्ञात नहीं है, तो इसका अर्थ है कि आपने अपने जीवन को तैयार नहीं किया है। अतः मृत्यु के समय आपकी मानसिकता बिना किसी योजना के एक अन्य शरीर का निर्माण करेगी तथा प्रकृति उसकी आपूर्ति करेगी।

**बॉब** : यदि कृष्ण का सब पर नियन्त्रण है, तब कृष्ण एक अभक्त पर किस प्रकार नियन्त्रण करते हैं ?

**श्रील प्रभुपाद** : माया के द्वारा। जैसे सरकार प्रत्येक वस्तु पर नियन्त्रण करती है। राजा के विभाग राज्य पर नियन्त्रण करते हैं।

**बॉब** : तथा कृष्ण एक भक्त पर किस प्रकार नियन्त्रण करते हैं ?

**श्रील प्रभुपाद** : जैसे आप अपनी प्रेमिका पर नियन्त्रण करते हैं। उदाहरणार्थ यदि आपकी एक प्रिय सन्तान है, आप उसके लाभ के



लिए उस पर नियन्त्रण करते हैं। यदि वह अग्नि को स्पर्श करने जा रहा है तब आप तत्काल उसे कहेंगे, “नहीं, नहीं, प्रिय पुत्र, इसका स्पर्श मत करो।” अतएव एक कृष्णभावनामय भक्त कभी भी पथभ्रष्ट नहीं होता है, क्योंकि कृष्ण सदा उसका मार्गदर्शन करते हैं जबकि वे लोग जो कृष्णभावनामय नहीं हैं, माया के नियन्त्रण में हैं। आपने देखा ही होगा कि माया आवश्यक कार्य करती है।

**बाँब :** क्या हमारे जन्म के समय हमारी मृत्यु का समय पूर्व निश्चित कर दिया जाता है? जब मैं जन्म लेता हूँ, तब क्या मेरी एक निश्चित आयु निर्धारित होती है?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ।

**एक भक्त :** तथा वह उसमें परिवर्तन नहीं कर सकता है?

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं, वह इसमें परिवर्तन नहीं कर सकता है, किन्तु कृष्ण इसमें परिवर्तन कर सकते हैं।

**भक्त :** यदि वह आत्महत्या कर ले, क्या वह भी पूर्वनिर्धारित होता है?

**श्रील प्रभुपाद :** नहीं, यह पूर्वनिर्धारित नहीं है। आप ऐसा इसलिए कर सकते हैं, क्योंकि आपको किंचित् स्वतन्त्रता है। आत्महत्या करना स्वाभाविक नहीं है, यह अस्वाभाविक है। अतः हम स्वतन्त्र होने के कारण स्वभाव से “अस्वभाव” को जा सकते हैं। एक बन्दी स्वाभाविक रूप से कारागार के बाहर नहीं जा सकता है, किन्तु किसी प्रकार वह दीवार फाँदने का प्रबन्ध कर लेता है तथा भाग जाता है। तब उसका अर्थ यह है कि वह पुनः अपराधी बन जाता है। वह पुनः बन्दी बनाया जाएगा तथा उसके बन्दीकाल की अवधि में वृद्धि कर दी जाएगी अथवा उसे और अधिक दण्ड दिया जाएगा। अतः स्वाभाविक रूप से हम अपने भाग्य का अतिक्रमण नहीं कर

सकते हैं। यदि हम ऐसा करें तब हमें कष्ट भोगना होगा। किन्तु जब हम कृष्णभावनाभावित हो जाते हैं, तब कृष्ण हमारा भाग्य परिवर्तित कर सकते हैं। हम ऐसा नहीं कर सकते हैं, किन्तु कृष्ण ऐसा करेंगे। कृष्ण कहते हैं, *अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि।* “मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।” वह परिवर्तन मेरी रक्षा के लिए होगा। दो स्तर हैं—अभक्त तथा भक्त। अभक्त भौतिक प्रकृति के नियन्त्रण में रहता है, तथा भक्त सीधा कृष्ण के नियन्त्रण में है। किसी बड़े कारखाने में अनेकों कर्मचारी होते हैं, तथा उन पर विभिन्न विभागीय निरीक्षक नियन्त्रण रखते हैं। किन्तु यद्यपि घर के बाहर वह व्यक्ति परोक्ष रूप से नियन्त्रण रख रहा है, तथापि वही व्यक्ति घर पर अपनी सन्तान पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण रखता है। किन्तु वह सदा ही एक नियन्ता है। उसी भाँति भगवान् भी सदा ही नियन्ता हैं। जब कोई भक्त बन जाता है, तब वह भगवान् द्वारा नियन्त्रित होता है; जब वह अभक्त होता है तब वह भगवान् की कार्यकर्ता माया के द्वारा नियन्त्रित होता है। किन्तु उसका नियन्त्रण होना ही है। उदाहरणार्थ, अमेरिका का प्रत्येक नागरिक सरकार द्वारा नियन्त्रित है। जब वह ठीक रहता है तब वह नागरिक विभाग के नियन्त्रण में रहता है, किन्तु जब वह ठीक से नहीं रहता है तब वह अपराध-विभाग के नियन्त्रण में रहता है। वह यह नहीं कह सकता है, “मैं नियन्त्रित नहीं हूँ।” यह असम्भव है। यदि कोई कहता है, “मैं स्वतंत्र हूँ” उसकी मानसिक स्थिति ठीक नहीं है। वह विक्षिप्त है। प्रत्येक व्यक्ति नियन्त्रित है। या तो आप सीधे भगवान् द्वारा नियन्त्रित हैं अथवा आप उनकी कार्यकर्ता माया द्वारा नियन्त्रित हैं। यदि माया द्वारा नियन्त्रित होना स्वीकार करते हैं तो आप अपना जीवन बरबाद कर देते हैं, आप अपना शरीर परिवर्तित करते हुए जन्म-जन्मान्तर

तक भौतिक अस्तित्व में रहते हैं। किन्तु यदि आप भगवान् द्वारा नियन्त्रित होने का चयन करते हैं, तब इस शरीर के उपरान्त आप अपने घर भगवान् के धाम लौट जाते हैं। तब आपका जीवन सफल होता है। नियन्त्रित हुए बिना आपका अस्तित्व नहीं रह सकता है; यह सम्भव नहीं है। बुद्धि का अर्थ है, स्वयं को कृष्ण द्वारा नियन्त्रित होने देना। *भगवद्गीता* में भी यह कहा गया है—*बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते*। “अनेकों जन्म लेने के बाद अथवा अनेकों जन्मों तक मनोकल्पना करने के बाद, व्यक्ति मेरी शरण ग्रहण करता है।” *वासुदेवः सर्वम् इति*—“कृष्ण, आप सर्वस्व हैं। अतः मैं आया हूँ। मुझे स्वीकार कीजिए। अब मैं पूर्णरूपेण आपके शरणागत हूँ तथा आप मुझ पर नियन्त्रण कीजिए। मैं नियन्त्रित हूँ। बहुत समय तक मैं इन दुष्टों के द्वारा नियन्त्रित रहा हूँ। कोई लाभ नहीं हुआ। मैं अपनी इन्द्रियों के द्वारा नियन्त्रित हूँ। इन्द्रियों के नियन्त्रण के अन्तर्गत मैंने तथाकथित परिवार, समाज, देश तथा मातृभूमि, यहाँ तक कि कुत्तों तक की सेवा की है। किन्तु किसी से मुझे सन्तोष प्राप्त नहीं हुआ है। अब मुझे सदबुद्धि आई है, अतः मैं स्वयं को आपके अधीन करता हूँ। कुत्ते द्वारा नियन्त्रित होने के स्थान पर मुझे भगवान् द्वारा नियन्त्रित होने दीजिए।” यह कृष्णभावनामृत है। क्या आपने यह नहीं देखा है कि एक मानव किस प्रकार कुत्ते द्वारा नियन्त्रित होता है? गली में कुत्ता रुक जाता है, मल त्याग करता है, तथा उसका स्वामी खड़ा होकर प्रतीक्षारत रहता है। ऐसा है की नहीं? कुत्ता मल-मूत्र का त्याग कर रहा है तथा स्वामी विचार कर रहा है कि, “मैं स्वामी हूँ।” किन्तु वह नियन्त्रित हो रहा है। यह माया है। वह कुत्ते का दास बन गया है, किन्तु वह विचार कर रहा है कि, “मैं स्वामी हूँ।” अतः जब तक

मानव कृष्णभावनाभावित न हो, वह समझ नहीं सकता है। हम समझ सकते हैं कि यह दुष्ट अपने कुत्ते द्वारा नियन्त्रित हो रहा है, किन्तु वह समझता है कि वह स्वामी है। आपका क्या विचार है? क्या वह अपने कुत्ते द्वारा नियन्त्रित नहीं हो रहा है?

**बाँब :** ऐसा ही है।

**श्रील प्रभुपाद :** किन्तु वह विचार कर रहा है कि, “मैं कुत्ते का स्वामी हूँ।” एक गृहस्थ अपनी पत्नी, अपनी सन्तान, अपने सेवकों तथा प्रत्येक व्यक्ति द्वारा नियन्त्रित होता है, किन्तु वह सोचता है, “मैं स्वामी हूँ।” राष्ट्रपति निकसन विचार करते हैं कि वे अपने देश के स्वामी हैं, किन्तु वे नियन्त्रित हैं। जनता, जो उनकी सेवक है, तत्काल ही उन्हें पदच्युत कर सकती है। वे पद ग्रहण करते समय दावा करते हैं, “मैं आपकी अत्यन्त उत्तम सेवा करूँगा”, “मैं प्रथम श्रेणी का सेवक बनूँगा।” अतएव लोग उन्हें मत देते हैं, “ठीक है, आप राष्ट्रपति बन जाइए।” तथा वे विज्ञापन कर रहे हैं—मेरा पुनर्निर्वाचन कीजिए, मेरा पुनर्निर्वाचन कीजिए!” इसका अर्थ है कि वे एक सेवक हैं। किन्तु वे विचार करते हैं कि, “मैं स्वामी हूँ।” वस्तुस्थिति यही है—माया। माया द्वारा नियन्त्रित व्यक्ति स्वयं को स्वामी समझता है, किन्तु वह दास है। एक भक्त स्वयं के विषय में कभी यह विचार नहीं करता है कि “मैं स्वामी हूँ” वह विचार करता है कि “मैं सेवक हूँ।” माया तथा वास्तविकता में यही भेद है। उसे कम से कम ज्ञात तो है, “मैं स्वामी कभी भी नहीं हूँ, मैं सदैव सेवक हूँ,” जब एक दास यह विचार करता है कि, “मैं स्वामी हूँ,” तब उसे माया कहा जाता है। किन्तु जब एक सेवक यह विचार करता है कि, “मैं एक सेवक हूँ,” यह माया नहीं है। यह मुक्ति है क्योंकि वह मिथ्या विचारों द्वारा नियन्त्रित नहीं है। इस

विषय-वस्तु पर विचार करने का प्रयास कीजिए। एक भक्त कभी भी मिथ्या विचारों द्वारा नियन्त्रित नहीं होता है। उसे अपनी स्थिति का ज्ञान है। *स्वरूपेण व्यवस्थितिः* ( श्रीमद्भागवतम् २.१०.६) मुक्ति का अर्थ है, अपने मूलस्थिती में स्थित होना। मैं एक दास हूँ। अतः यदि मुझे यह ज्ञात है कि मैं एक दास हूँ तब वह मेरी मुक्ति है। तथा यदि मैं यह विचार करूँ कि मैं स्वामी हूँ, वह बन्धन है। बद्धजीवन तथा मुक्तजीवन में यही भेद है।

ये कृष्णभावनाभावित भक्त सदैव यही विचार करते हैं कि वे कृष्ण के सेवक हैं। अतएव वे सभी मुक्त हैं। वे मुक्ति के लिए चेष्टा नहीं करते हैं। वे मूल स्थिति में स्थित हैं, अतएव वे पहले से ही मुक्त हैं। वे कृत्रिम रूप से यह विचार नहीं करते हैं, “मैं स्वामी हूँ।” अन्यथा प्रत्येक व्यक्ति यही विचार कर रहा है, “मैं स्वामी हूँ।” यह भ्रम अथवा माया है। आप जीवन की किसी भी दशा में स्वामी नहीं हो सकते हैं; आपको दास ही रहना है। यही आपकी स्थिति है। जब व्यक्ति कृत्रिम रूप से यह सोचता है कि वह स्वामी है, वह बद्ध-जीवन है। तथा जब व्यक्ति स्वेच्छापूर्वक परम स्वामी की शरण में चला जाता है, वह उसकी मुक्ति है। भक्त मुक्ति के लिए पृथक प्रयास नहीं करता है। जैसे ही वह कृष्ण अथवा कृष्ण के प्रतिनिधि की शरण में आता है, वह मुक्त हो जाता है।

**बाँब :** प्रभुपाद, धर्म में संलग्न रहने वाले वे लोग, जैसे “ईसा-तरंग” वाले तथा अन्य लोग दावा करते हैं कि ईसामसीह उनका मार्गदर्शन कर रहे हैं। क्या ऐसा हो सकता है ?

**श्रील प्रभुपाद :** हाँ, किन्तु वे मार्गदर्शन को स्वीकार नहीं कर रहे हैं। ठीक ईसाई लोगों के समान। ईसामसीह उन्हें मार्गदर्शन करते हैं कि “तुम वध नहीं करोगे।” किन्तु वे वध कर रहे हैं। ईसामसीह

का मार्गदर्शन कहाँ है ? केवल यह कहना मात्र कि, “ईसामसीह मेरा मार्गदर्शन कर रहे हैं,” पर्याप्त है क्या ? “किन्तु मुझे उनके कथनों की परवाह नहीं है।” क्या यह पथप्रदर्शन है ? कोई भी ईसामसीह द्वारा प्रदर्शित पथ पर नहीं चल रहा है। उनका दावा झूठा है। किसी ऐसे व्यक्ति का मिलना अत्यन्त कठिन है जो वास्तव में ईसामसीह से निर्देशन ले रहा हो। ईसामसीह का पथप्रदर्शन उपलब्ध है, किन्तु कोई उनकी परवाह नहीं कर रहा है। उन्होंने ईसामसीह को अपने पापों को लेने वाला ठेकेदार बना रखा है। यही उनकी विचारधारा है। वे सब प्रकार के पाप करते हैं तथा ईसामसीह उसके लिए उत्तरदायी होंगे। वह उनका धर्म है। अतएव वे कहते हैं, “हमारा धर्म अत्यन्त श्रेष्ठ है। हमारे सभी पापकर्मों के लिए ईसामसीह प्राणों की बलि देंगे।” क्या यह श्रेष्ठ धर्म है ? उन्हें ईसामसीह के प्रति कोई सहानुभूति नहीं है। उन्होंने हमारे पापों के लिए प्राण दिये। फिर हम पुनः पाप क्यों करें ? एक महान जीवन हमारे पापों के कारण बलिदान हो गया, अतः हमें ईसामसीह से मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए। किन्तु यदि आप इसे दूसरे रूप में लें—“हम पाप करते रहेंगे, तथा ईसामसीह हमारे सपस्त पापों को निष्फल करने का ठेका लेंगे। मैं केवल चर्च में जाकर अपने पापों को स्वीकार करूँगा तथा वापस लौट कर पुनः सब मूर्खताएँ करूँगा”—क्या इससे एक श्रेष्ठ बुद्धि का प्रदर्शन होता है ?

**बाँब :** नहीं।

**श्रील प्रभुपाद :** जो वास्तव में ईसामसीह का पथप्रदर्शन ग्रहण करता है, वह निश्चय ही मुक्ति को प्राप्त करेगा। किन्तु ऐसे व्यक्ति को पाना अत्यन्त कठिन है, जो वास्तव में ईसामसीह के द्वारा प्रदर्शित पथ का अनुसरण करता हो।

**बॉब :** “ईसा-तरंग” वाले लोगों के विषय में आपका क्या विचार है, उन युवा लोगों के विषय में जो ईसामसीह के आन्दोलन में सम्मिलित हुए हैं ? वे प्रायः बाईबल का पाठ करते हैं तथा वे प्रयास करते हैं कि...

**श्रील प्रभुपाद :** किन्तु हिंसा बाईबल के निर्देशों के विरुद्ध है। यदि वे बाईबल का अनुसरण कर रहे हैं तब वे वध कैसे कर सकते हैं।

**बॉब :** मैंने एक से यह प्रश्न किया था; उसने दावा किया कि बाईबल में ईसामसीह भी मांस भक्षण कर रहे थे।

**श्रील प्रभुपाद :** वह ठीक है। वे कुछ भी खा सकते हैं। वे शक्तिमान् हैं। किन्तु उन्होंने आदेश दिया है। “तुम हत्या नहीं करोगे। तुम्हें हत्या बन्द करनी होगी।” वे शक्तिमान् हैं। वे समस्त जगत् का भक्षण कर सकते हैं। किन्तु आप अपनी तुलना ईसामसीह से नहीं कर सकते हैं। आप उनकी नकल नहीं कर सकते हैं, आपको उनके आदेश का पालन करना होगा। तब आप ईसामसीह से पथप्रदर्शन स्वीकार करते हैं। यह वास्तव में आज्ञाकारिता है। भागवतम् में इसे स्पष्ट किया गया है। जो ईश्वर है; जो शक्तिमान् है, वह कुछ भी कर सकता है, किन्तु हम नकल नहीं कर सकते हैं। हमें उनके आदेश का पालन करना होगा। “वे मुझसे जो कहेंगे, मैं वही करूँगा।” आप नकल नहीं कर सकते हैं। आप कहते हैं कि ईसामसीह ने मांस भक्षण किया। यह मान भी लें तो भी आप को यह ज्ञात नहीं है कि उन्होंने किन परिस्थितियों में मांस भक्षण किया। वे स्वयं मांस भक्षण कर रहे हैं तथा दूसरों को हत्या न करने का परामर्श दे रहे हैं। क्या आपके विचार में ईसामसीह अपनी ही बात काट रहे थे ?

**बॉब :** नहीं।

**श्रील प्रभुपाद :** वे ऐसा नहीं कर सकते हैं। यही उनमें सच्चा विश्वास है—वे ऐसा नहीं कर सकते हैं। फिर उन्होंने मांस भक्षण क्यों किया ? उन्हें ज्ञात है, किन्तु उन्होंने मुझे हत्या न करने का आदेश दिया है। मुझे उसका पालन करना है। यही सच्ची प्रणाली है। आप ईसामसीह नहीं हैं, अतः आप उनका अनुकरण नहीं कर सकते हैं। उन्होंने ईश्वर के लिए अपने जीवन का बलिदान किया है। क्या आप वैसा कर सकते हैं ? फिर आप ईसामसीह का अनुकरण क्यों करें ? आप मांस भक्षण करके ईसामसीह का अनुकरण कर रहे हैं। आप ईसामसीह का अनुकरण करके भगवद्भावना का प्रसार करने के लिए अपने जीवन का बलिदान क्यों नहीं करते हैं ? आपका क्या विचार है ? हाँ जब आप प्रचार करते हैं तब आप जो सोचें कह सकते हैं। वे तथाकथित ईसाई हैं—किन्तु वे भगवान् के लिए क्या कर रहे हैं ? सूर्य पर विचार कीजिए। सूर्य मूत्र सोख रहा है। क्या आप मूत्र का पान कर सकते हैं ? यदि आप सूर्य का अनुकरण करना चाहते हैं—“अरे, देखो, सूर्य मूत्र को सोख रहा है। मैं भी मूत्र पान करूँगा”—क्या आप ऐसा कर सकते हैं ? ईसामसीह शक्तिशाली हैं। वे सब कुछ कर सकते हैं। किन्तु हम अनुकरण नहीं कर सकते हैं; हम केवल उनकी आज्ञा का पालन कर सकते हैं। यही वास्तविक ईसाइयत है। हम एक शक्तिशाली व्यक्ति का अनुकरण नहीं कर सकते हैं। यह दोषपूर्ण है। हमारे वैदिक साहित्य में एक विष का सागर था। लोगों को यह समझ में नहीं आता था कि उसका क्या करें। तत्पश्चात् शिवजी ने कहा, “ठीक है। मैं इसको पी लूँगा।” अतएव उन्होंने समस्त विष-सागर का पान कर लिया तथा उसे अपने कण्ठ में रख लिया। क्या आप विषपान कर सकते हैं ? सागर नहीं—केवल एक

प्याला ? फिर हम शिवजी का अनुकरण किस प्रकार कर सकते हैं ? शिवजी ने हमें विषपान करने का परामर्श कभी नहीं दिया। अतः आपको परामर्श का पालन करना है, अनुकरण नहीं। ये एल.एस.डी. तथा चरस पीने वाले लोग कहते हैं कि शिवजी गाँजा पीते थे। किन्तु शिवजी ने सम्पूर्ण विष-सागर का पान किया। क्या आप वैसा कर सकते हैं ? शिवजी का उपदेश लेना चाहिए। वे कहते हैं कि सर्वोत्कृष्ट उपासना विष्णु की उपासना है। *विष्णोराराधनं परम्।* जब पार्वती जी ने उनसे प्रश्न किया कि उपासना की कौन सी विधि सर्वोत्तम है, तब उन्होंने कहा, “ भगवान् विष्णु (कृष्ण) की उपासना सर्वोत्तम उपासना है।” देवता अनेक हैं, किन्तु उन्होंने विष्णु पूजा को सर्वोत्तम कहा। तथा विष्णु की उपासना से भी उत्तम एक वैष्णव की उपासना है। *तदीयानाम्—* उनके सेवक, अथवा वे जिनका उनसे सम्बन्ध है। उदाहरण के लिए हम इन तुलसी के पौधों की उपासना करते हैं। हम समस्त पौधों की उपासना नहीं करते हैं, किन्तु क्योंकि तुलसी का कृष्ण, विष्णु के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है, अतएव हम इसकी उपासना करते हैं। इसी प्रकार, यदि किसी वस्तु का कृष्ण से घनिष्ठ सम्बन्ध हो, तो उसकी उपासना विष्णु की उपासना से अधिक उत्तम है।

**बाँब :** ऐसा क्यों है ?

**श्रील प्रभुपाद :** क्योंकि इससे कृष्ण प्रसन्न होंगे। मान लीजिए आप के पास एक कुत्ता है तथा कुछ मित्र आते हैं और आपके कुत्ते को थपकते हैं। [ श्रील प्रभुपाद थपकने का अभिनय करते हैं ] आप प्रसन्न हो जाते हैं। आप प्रसन्न हो जाते हैं। “अरे, यह मेरा अच्छा मित्र है।” आप देखते हैं कि उनकी विचारधारा कैसी है। हम यह देखते हैं—कोई मित्र आता है तथा कहता है, “वाह! तुम्हारे पास

कितना अच्छा कुत्ता है!” [हँसी।] [कुछ भारतीय अतिथि कक्ष में प्रवेश करते हैं।]

**श्रील प्रभुपाद :** कृपया, प्रसाद ग्रहण कीजिए।

[ श्रील प्रभुपाद अपने अतिथियों से वार्तालाप जारी रखते हैं, कभी-कभी अँग्रेजी में तथा कभी-कभी हिन्दी में। न्यूयॉर्क में यह उनका अंतिम दिन है, तथा उनके लंदन जाने वाले विमान के प्रस्थान का समय कुछ ही घंटों के पश्चात् है। श्रील प्रभुपाद को केनेडी हवाईअड्डे तक ले जाने के लिए बाँब एक कार लेकर आया है। सामान को गाड़ी तक पहुँचाते हुए, श्रील प्रभुपाद के नवीनतम अनुवाद-कार्य की पांडुलिपियों को क्रम से रखते हुए, तथा अन्तिम क्षण के प्रबन्धों को पूर्ण करते हुए, भक्त इधर-उधर भाग दौड़ रहे हैं।]

**श्यामसुन्दर :** श्रील प्रभुपाद! सब तैयारी हो गई है। कार हम लोगों की प्रतीक्षा कर रही है।

**श्रील प्रभुपाद :** फिर ? हम अब प्रस्थान कर सकते हैं ? ठीक है। हरे कृष्ण।

## निष्कर्ष

१९ जुलाई, १९७६ को कृष्णकृपामूर्ति श्रील प्रभुपाद ने मुझे तथा मेरी पत्नी को अपने शिष्यों के रूप में स्वीकार किया, तथा ब्रह्मतीर्थ दास तथा भक्ति देवी दासी के नामों से हमें दीक्षा दी। उस दिन पर पुनः विचार करते हुए मैं देख सकता हूँ कि हरे कृष्ण आन्दोलन में अपने गुरु भाइयों तथा कृष्णकृपामूर्ति से भेंट होना मेरा कितना महान् सौभाग्य था।

जब मुझे दीक्षा के समय मेरी माला प्रदान की गई, तब मैंने वचन दिया कि मैं विधि-विधानों का पालन करूँगा तथा प्रतिदिन भगवान् के नामों का जप करूँगा। चार वर्ष पूर्व श्रील प्रभुपाद ने मुझे इन विधानों का पालन करने का परामर्श दिया था। तथा छः मास के अन्दर, उन्होंने कहा, मैं अन्य भक्तों के समान हो सकता हूँ। समस्त अनर्थ (अनावश्यक वस्तुएँ) जैसे कि सांसारिक चलचित्र तथा भोजनालय मेरे लिए आकर्षणहीन हो जाएँगे। “समस्त मानव जीवन शुद्धीकरण के लिए है,” उन्होंने कहा। यद्यपि मुझे वास्तव में यह ज्ञात नहीं था कि शुद्धीकरण का अर्थ क्या है तथापि शुद्ध होने में मेरी रुचि थी। चेतना के एक उच्चतर स्तर को प्राप्त करने की आशा लेकर मैं पीस कोर के साथ भारत गया था। मैं यह विश्वास न कर पाता था कि इन्द्रियों को तृप्त करना ही सर्वस्व है, किन्तु फिर भी मैं स्वयं इन्द्रियों द्वारा बद्ध था। कालान्तर में मुझे समझ में आया कि योग का अर्थ है इन्द्रियों के प्रभुत्व से मुक्ति प्राप्त करना।

अमेरिका लौटने पर मैंने भूगर्भशास्त्र में स्नातकशिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ की, विवाह किया, तथा गृहस्थी के उत्तरदायित्वों में कुछ-कुछ फँस गया। किन्तु अनेकों बार मैं श्रील प्रभुपाद के साथ हुए अपने वार्तालापों पर विचार करता था तथा उनके उपदेशों का चिन्तन करता था। उनका एक प्रारम्भिक उपदेश यह था कि भक्तों की संगति करो; तथा मैंने यह प्रसन्नतापूर्वक किया। भक्त लोग विशिष्ट होते हैं। परमेश्वर की प्रेम सेवा ही जीवन का लक्ष्य है, यह समझने से वे इन्द्रिय-तृप्ति तथा झूठे अहं के चक्कर में फँसने से बच जाते हैं। मन्दिर में जाना अत्यन्त स्फूर्तिदायक था। शनैः शनैः मेरी तथा मेरी पत्नी की कई भक्तों से मैत्री हो गई तथा हम किसी प्रकार इस आन्दोलन के लिए कोई सेवा करने की इच्छा करने लगे। मैंने विश्वविद्यालय में एक भक्ति-योग क्लब का आयोजन किया, तथा हमारा घर भक्तों के यात्री समूहों के लिए उठरने का स्थान बन गया।

जैसे-जैसे हम श्रील प्रभुपाद के उपदेशों का पालन करने लगे हमारा भोजन भी शुद्ध हो गया। भारत में मैंने श्रील प्रभुपाद को बताया था कि मैं भक्तों के समान अपना भोजन भगवान् को अर्पित नहीं कर सकता था, क्योंकि मैं यह नहीं समझा था कि कृष्ण भगवान् हैं। अतः उन्होंने मुझे कहा था कि भोजन के पूर्व मैं केवल उस भोजन के लिए भगवान् को धन्यवाद दिया करूँ। ऐसा हमने किया। अन्त में हमारी भक्ति परिपक्व हो गई तथा हमने वस्तुतः अपना भोजन परमेश्वर को अर्पित करना प्रारम्भ कर दिया। परमेश्वर के लिए भोजन बनाना, यह कितनी आश्चर्यजनक अनुभूति है। इसने हमें वस्तुतः जिह्वा के नियन्त्रण से मुक्त कर दिया।

अन्ततः हम मन्दिर के जीवन में पूर्णरूपेण सम्मिलित होने के लिए तत्पर हो गये थे। कृष्ण की कृपा से मैंने टेक्सास में एक मन्दिर

के समीप एक नौकरी प्राप्त कर ली तथा मन्दिर के समस्त कार्यक्रमों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार जैसे श्रील प्रभुपाद ने भविष्यवाणी की थी, ठीक उसी प्रकार समस्त अनर्थ विलुप्त हो गये। यह ऐसा ही था जैसे हमारे कन्धों से कोई बड़ा बोझ उठ गया हो। हम अब इन्द्रियों के दास नहीं थे, अपितु भगवान् तथा उनके भक्तों के दास थे। श्रील प्रभुपाद के उपदेशों का मूल्य अब स्पष्ट हो गया था। गधे की भाँति श्रम करना तथा कुत्ते की भाँति भोग करना मानव का लक्ष्य नहीं है। शुद्धीकरण का तात्पर्य है चेतना के एक उच्चतर स्तर की प्राप्ति।

यद्यपि मैं दीक्षित हो चुका हूँ, तथापि मैं अभी भी अपने गुरु-भाइयों के आध्यात्मिक बोध तथा प्रगति की लालसा की सराहना करता हूँ। वस्तुतः दीक्षा आरम्भिक कदम है।

ब्रह्मतीर्थ दास अधिकारी

(बॉब कोहेन)

हस्टन, टेक्सास

१६ अक्टूबर, १९७६

## लेखक-परिचय

कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद का आविर्भाव १८९६ ई. में भारत के कलकत्ता नगर में हुआ था। अपने गुरु महाराज श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी से १९२२ में कलकत्ता में उनकी प्रथम भेंट हुई। एक सुप्रसिद्ध धर्म तत्त्ववेत्ता, अनुपम प्रचारक, विद्वान्-भक्त, आचार्य एवं चौसठ गौड़ीय मठों के संस्थापक श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती को ये सुशिक्षित नवयुवक प्रिय लगे और उन्होंने वैदिक ज्ञान के प्रचार के लिए अपना जीवन समर्पित करने की इनको प्रेरणा दी। श्रील प्रभुपाद उनके अनुयायी बने और ग्यारह वर्ष बाद (१९३३ ई.) प्रयाग (इलाहाबाद) में उनके विधिवत् दीक्षा-प्राप्त शिष्य हो गए।

अपनी प्रथम भेंट में ही श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रील प्रभुपाद से निवेदन किया था कि वे अंग्रेजी भाषा के माध्यम से वैदिक ज्ञान का प्रसार करें। आगामी वर्षों में श्रील प्रभुपाद ने *भगवद्गीता* पर एक टीका लिखी, गौड़ीय मठ के कार्य में सहयोग दिया तथा १९४४ ई. में बिना किसी की सहायता के एक अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका आरम्भ की। उसका सम्पादन, पाण्डुलिपि का टंकण और मुद्रित सामग्री के प्रूफ शोधन का सारा कार्य वे स्वयं करते थे। अब यह उनके शिष्यों द्वारा चलाई जा रही है और तीस से अधिक भाषाओं में छप रही है।

श्रील प्रभुपाद के दार्शनिक ज्ञान एवं भक्ति की महत्ता पहचान कर गौड़ीय वैष्णव समाज ने १९४७ ई. में उन्हें भक्तिवेदान्त की

उपाधि से सम्मानित किया। १९५० ई. में श्रील प्रभुपाद ने गृहस्थ जीवन से अवकाश लेकर वानप्रस्थ ले लिया जिससे वे अपने अध्ययन और लेखन के लिए अधिक समय दे सकें। तदनन्तर श्रील प्रभुपाद ने श्री वृन्दावन धाम की यात्रा की, जहाँ वे अत्यन्त साधारण परिस्थितियों में मध्यकालीन ऐतिहासिक श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में रहे। वहाँ वे अनेक वर्षों तक गम्भीर अध्ययन एवं लेखन में संलग्न रहे। १९५९ ई. में उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में ही श्रील प्रभुपाद ने अपने जीवन के सबसे श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण कार्य को प्रारम्भ किया था। यह कार्य था अठारह हजार श्लोक संख्या वाले *श्रीमद्भागवतम्* पुराण का अनेक खण्डों में अंग्रेजी में अनुवाद और व्याख्या। वहीं उन्होंने 'अन्य ग्रहों की सुगम यात्रा' नामक पुस्तिका भी लिखी थी।

*श्रीमद्भागवतम्* के प्रारम्भ के तीन खण्ड प्रकाशित करने के बाद श्रील प्रभुपाद सितम्बर १९६५ ई. में अपने गुरुदेव के आदेश का पालन करने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका गए। तत्पश्चात् श्रील प्रभुपाद ने भारतवर्ष के श्रेष्ठ दार्शनिक और धार्मिक ग्रन्थों के प्रामाणिक अनुवाद, टीकाएँ एवं संक्षिप्त अध्ययन-सार के रूप में साठ से अधिक ग्रन्थ-रत्न प्रस्तुत किए।

जब श्रील प्रभुपाद एक मालवाहक जलयान द्वारा प्रथम बार न्यूयार्क नगर में आये, तो उनके पास एक पैसा भी नहीं था। अत्यन्त कठिनाई भरे लगभग एक वर्ष के बाद जुलाई १९६६ ई. में उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना की। १४ नवम्बर १९७७ ई. को कृष्ण-बलराम मन्दिर, श्रीवृन्दावन धाम में अप्रकट होने के पूर्व श्रील प्रभुपाद ने अपने कुशल मार्ग-निर्देशन से संघ को

विश्वभर में सौ से अधिक आश्रमों, विद्यालयों, मन्दिरों, संस्थाओं और कृषि-समुदायों का बृहद् संगठन बना दिया।

श्रील प्रभुपाद ने श्रीधाम-मायापुर, पश्चिम बंगाल में एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र के निर्माण की प्रेरणा दी। यहीं पर वैदिक साहित्य के अध्ययनार्थ सुनियोजित संस्थान की योजना है, जो अगले दस वर्ष तक पूर्ण हो जाएगा। इसी प्रकार श्रीवृन्दावन धाम में भव्य कृष्ण-बलराम मन्दिर और अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि भवन तथा श्रील प्रभुपाद-स्मृति संग्रहालय का निर्माण हुआ है। ये वे केन्द्र हैं जहाँ पाश्चात्य लोग वैदिक संस्कृति के मूल रूप का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। मुंबई में भी श्रीराधारासबिहारीजी मन्दिर के रूप में एक विशाल सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक केन्द्र का विकास हो चुका है। इसके अतिरिक्त भारत में दिल्ली, बँगलोर, अहमदाबाद, कलकत्ता तथा अन्य स्थानों पर सुन्दर मन्दिर हैं।

किन्तु, श्रील प्रभुपाद का सबसे बड़ा योगदान उनके ग्रन्थ हैं। ये ग्रन्थ विद्वानों द्वारा अपनी प्रामाणिकता, गम्भीरता और स्पष्टता के कारण अत्यन्त मान्य हैं और अनेक महाविद्यालयों में उच्चस्तरीय पाठ्यग्रन्थों के रूप में प्रयुक्त होते हैं। श्रील प्रभुपाद की रचनाएँ ५० से अधिक भाषाओं में अनूदित हैं। १९७२ ई. में केवल श्रील प्रभुपाद के ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए स्थापित भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, भारतीय धर्म और दर्शन के क्षेत्र में विश्व का सबसे बड़ा प्रकाशक हो गया है। इस ट्रस्ट का एक अत्यधिक आकर्षक प्रकाशन श्रील प्रभुपाद द्वारा केवल अठारह मास में पूर्ण की गई उनकी एक अभिनव कृति है जो बंगाली धार्मिक महाग्रन्थ श्रीचैतन्यचरितामृत का सत्रह खण्डों में अनुवाद और टीका है।



बारह वर्षों में, अपनी वृद्धावस्था की चिन्ता न करते हुए श्रील प्रभुपाद ने विश्व के छहों महाद्वीपों की चौदह परिक्रमाएँ कीं। इतने व्यस्त कार्यक्रम के रहते हुए भी श्रील प्रभुपाद की उर्वरा लेखनी अविरत चलती रहती थी। उनकी रचनाएँ वैदिक दर्शन, धर्म, साहित्य और संस्कृति के एक यथार्थ पुस्तकालय का निर्माण करती हैं।